आराधना

चैत्यवंदन सूत्र प्रकाश

प.पू.आचार्य श्री विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आराधना

(सामायिक - चैत्यवंदन-सूत्र व अर्थ-प्रकाश)

: अर्थ-लेखक :

वर्धमान तपोनिधि पूज्य आचार्य
श्री विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज

प्रकाशक

दिव्य दर्शन ट्रस्ट

कुमारपाल वि. शाह

३९, कलिकुंड सोसायटी,
धोलका
जिला-अहमदाबाद (गुजरात) Pin: 387 810

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

: सौजन्य :

श्री कोइम्बतूर जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ

: हस्ते :

श्रमणोपासक श्री कांतिलाल शाह (डीसावाले)

East Ponnurangaon Road, (E) R.S.Puram,
Coimbatore - 641 002

: संपादक :

पूज्य मुनि श्री भुवनसुंदर विजयजी महाराज

:मूल्यः

रुपये वीस

: मुद्रक :
ला क्रिएटा
राजकोट
फोन : ०२८१ - २४६५०७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय निवेदन

सिद्धि के लिए साधन और साधना दोनों अनिवार्य हैं। साधनार्थ के लिए ज्ञान और क्रिया दोनों आवश्यक हैं। ज्ञानयुक्त क्रिया मोक्षमार्ग है। मोक्ष के निमित ज्ञान और क्रिया आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है।

ज्ञान अर्थात् श्रुतज्ञान। इस श्रुतज्ञान के विषय में उल्लेख है, 'श्री अरिहंत भगवान् अर्थ का कथन करते हैं। गणधर भगवान् भव्य आत्माओं के कल्याण के उदेश्य से कुशलतापूर्वक उस अर्थ की रचना सूत्र रूप में करते हैं। फलतः श्रुत प्रवर्तित होता है।

श्री भद्रबाहु स्वामी ने श्रुतज्ञान का परिचय देते हुए कहा है कि 'सामायिक से लेकर बिंदुसार (चौदहवें पूर्व) तक सूत्रों व तदर्थ का ज्ञान श्रुतज्ञान है। इस श्रुतज्ञान का सार चारित्र है। चारित्र का सार या निचोड निर्वाण (मोक्षसुख) है।' पूज्य तीर्थंकरों ने ऐसे अर्थ की प्ररूपणा की जो भव्य जीवों की निर्वाण-प्राप्ति में साधन भूत हो। इसीलिए वे हमारे सर्वप्रथम उपकारी है। गणधर भगवंतों ने उस अर्थ को सूत्ररूप में हमें प्रदान किया व श्रीगुरु भगवंतों ने हमें उन सूत्रों का अर्थ, भावार्थ तथा महत्त्व समझाया। अतः वे भी हमारे उपकारी हैं। इन उपकारी महापुरूषों को वंदना, स्तुति, पूजा आदि करने में अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा का निश्चित कल्याण है।

श्रावक के लिए प्रतिदिन त्रिकाल जिनभक्ति - जिनोपासना यानी जिनपूजा, दर्शन, वंदन, चैत्यवंदनादि एवं गुरुवंदन और सामायिक आदि का अनुष्ठान शुद्ध विधि तथा शुभ भाव पूर्वक करना आवश्यक है। ज्ञानियों का कथन है कि भावपूर्वक की गई ये क्रियाएँ भव का नाश करने वाली हैं। उपर्युक्त क्रियाओं के लिए यह पुस्तक भी उपयोगी एवं आधाररूप तथा उपर्युक्त आलंबनरूप सिद्ध होगी।

इस उपयोगी पुस्तक के पृष्ठों में आगम सूत्रों के अभ्यासी, तप एवं शुद्ध क्रिया द्वारा उस श्रुतज्ञान को स्वजीवन में चरितार्थ करनेवाले पूज्यपाद **आचार्यदेव श्रीमद् विजय भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज** ने अभ्यासपूर्ण मननीय विवेचन प्रस्तुत किया है। विद्यालयों और महाविद्यालयों के छात्र ही नहीं, किन्तु पढ़ने और समझने में समर्थ सभी व्यक्ति इन निर्वाणप्रद सूत्रों का गहन एवं गंभीर रहस्य समझ सकें, ऐसी शैली से आपने अर्थ और भावार्थ बहुत स्पष्ट किया है। इसके साथ साथ इसमें गुरुवंदन, चैत्यवंदन, सामायिक लेने और पारने की विधि, सामायिक का महत्त्व और फल पर प्रकाश डाला गया है। इन विषयों के अतिरिक्त इस पुस्तक में पूर्वाचार्यों द्वारा रचित भावपूर्ण स्तवन, चैत्यवंदन, सज्झाय, थोय और स्तुतियों का भी संकलन किया गया है।

इस पुस्तक के प्रकाशन का एक विशेष उदेश्य है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैट्रिक - कालेज के जैन युवकों के जीवन - निर्माणार्थ गत ३१ वर्ष से जैन धर्मिक शिक्षण-शिविरों का आयोजन होता आ रहा है । इन शिविरों में पूज्यपाद आचार्य **श्री विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी महाराज** पांच पांच विषयों की तार्किक और रहस्यपूर्ण वाचनाएँ देते थे । शिविर में प्रविष्ट होनेवाले युवकों को ३१ दिन की अवधि में सामायिक, गुरुवंदन तथा चैत्यवंदन के सूत्र स्तवन, स्तुतियां, सज्झाय, थोय आदि अवश्यमेव कंठस्थ करने होते है । इन सूत्रों व उनके अर्थ, भावार्थ, विधि, स्तवन आदि के संकलन रूप पाठ्यपुस्तक का अभाव था । पूज्यपाद की प्रशस्त लेखिनी द्वारा ग्रथित यह पुस्तक उस अभाव की पूर्ति करती है । वैसे तो यह पुस्तक शिविरार्थियों के लिए लिखी गई है । परन्तु प्रारंभ से अभ्यास करने के अभिलाषी आराधकों, पाठशालाओं के छात्र-छात्राओं तथा इन क्रियाओं में रसरुचि रखनेवाले सभी के लिए यह उतनी ही उपयोगी है ।

इस पाठयपुस्तक की विशिष्टता और विबोधकता यह है कि पूज्यपाद आचार्य महाराज ने अपनी विविध सम्यक् शासन सेवाओं के उत्तरदायित्व और व्यस्तता से समय निकालकर सूत्रों का सविस्तार अर्थ और भावार्थ लिख दिया है । उनकी अनुभवपूर्ण लेखनी के स्पर्श से यह पाठ्यपुस्तक प्रामाणिक बन गया है । उनके श्रम और उपकार के प्रति हम अतीव ऋणी हैं ।

इस अत्यधिक उपयोगी पुस्तक के हिन्दी अनुवाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की परम आवश्यकता थी । हिन्दी राष्ट्रभाषा है और हिन्दी - भाषी राज्यों में श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैनों की संख्या काफी है । वहां के युवकों को भी पुस्तक का लाभ प्राप्त हो, इस उद्देश्य से अब यह हिन्दी संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है । इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद अवकाश-प्राप्त प्रोफेसर पृथ्वीराजजी जैन ने किया है । परमपूज्य **आचार्यश्री जयसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज** एवं परमपूज्य **पन्यास श्री पद्मसेन विजयजी गणिवर महाराज** का मार्गदर्शन भी वंदनीय है । पूज्य **पन्यासश्री भुवनसुंदर विजयजी महाराज** ने कुछ नये स्तवनादि जोडने में और प्रुफ जाँचने में सहयोग दिया । हम उनके श्रम और योगदान के प्रति हार्दिक आभार प्रगट करते हैं ।

लि.

दिव्य दर्शन ट्रस्ट

कुमारपाल वि. शाह

धोलका, जिला - अहमदाबाद (गुजरात)

वि.सं. 2060

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ
●	हमारी दैनिक मंगल प्रार्थना	१
●	नवपद की स्तुति	४
●	भावना	४
●	प्रभु के सन्मुख बोलने योग्य स्तुतियाँ	५
●	श्री नमस्कार (नवकार) महामंत्र सूत्र	८
●	सूत्र परिचय	१०
●	पंचिदिय (गुरुस्थापना) सूत्र	११
२	पंचिदिय-सूत्र परिचय	१३
३	खमासमणुँ (पंचांग प्रणिपात) सूत्र	१४
४	गुरु-सुखशाता - पृच्छा सूत्र	१६
●	अब्भुठिओ (क्षामणक सूत्र)	१८
●	गुरुवंदन विधि	२२
●	गुरुवंदन की महिमा	२३
५	इरियावहियं (प्रतिक्रमण) सूत्र	२५
●	इरियावहियं - सूत्र - परिचय	२८
६	तस्स उत्तरीकरणेणं सूत्र	३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७	अन्नत्थ सूत्र	३३
८	लोगस्स (नामस्तव) सूत्र	३७
●	लोगस्स-सूत्र परिचय	४१
●	सामायिक	४३
●	सामायिक का फल	४३
●	सामायिक का महत्त्व	४३
●	व्रत (प्रतिज्ञा) का महत्त्व	४४
९	श्री करेमिभंते (सामायिक) सूत्र	४६
१०	सामाइय-वय-जुत्तो सूत्र	४९
●	सामायिक लेने की विधि	५२
●	मुहपत्ति के ५० बोल	५४
●	सामायिक पारने की विधि	५६
●	प्रणाम और चैत्यवंदन का भेद	५७
●	चैत्यवंदन का फल	५८
●	चैत्यवंदन से होनेवाला लाभ	५८
●	चैत्यवंदन के अनुपम लाभ	५९
११	जगचिंतामणि-चैत्यवंदन सूत्र	६०
●	जगचिंतामणि सूत्र का भावार्थ	६४
●	जगचिंतामणि-सूत्र-परिचय	६६
१२	जकिंचिनाम-तित्थं-सूत्र	६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३	नमुत्थुणं (शक्रस्तव) सूत्र	६९
•	नमुत्थुणं सूत्र का शब्दार्थ	७०
•	नमुत्थुणं सूत्र का भावार्थ	७२
•	नमुत्थुणं सूत्र परिचय	७५
१४	'जावंति चेईयाइँ' सूत्र	७७
१५	'जावंत केवि साहू' सूत्र	७८
१६	संक्षिप्त परमेष्ठि नमस्कार (नमोऽर्हत् सूत्र)	८०
१७	उवसग्गहरं स्तवन (स्तोत्र)	८०
•	उवसग्गहरं सूत्र शब्दार्थ	८१
•	उवसग्गहरं सूत्र भावार्थ	८३
१८	जयवीराय सूत्र	८५
•	जयवीराय सूत्र - शब्दार्थ	८६
•	जयवीराय सूत्र - भावार्थ	८८
•	जयवीराय सूत्र - परिचय	८९
१९	अरिहंत चेइआणं (चैत्यस्तव) सूत्र	९२
•	अरिहंत चेइआणं सूत्र परिचय	९५
•	प्रश्नः पूजा के बाद अरिहंत चेइआणं... क्यों बोलना?	९६
•	चैत्यवंदन की विधि	९८
•	जिनपूजा	९९
•	जिनदर्शन पूजा का फल	९९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- मूर्ति कैसे भगवान ? १००
- जिनपूजा की सामान्य विधि १०१
- नावाङ्गी पूजा के दोहे १०३
- नावाङ्गी का परिचय और नवाङ्गी पूजा में प्रार्थना १०६
- मस्तक पूजन पर भावना १०८
- ललाट पूजन पर भावना १०९
- कंठ और हृदय पूजन पर भावना ११०
- नाभि पूजन पर भावना १११
- प्रभु समक्ष गद्य प्रार्थना ११२
- चैत्यवंदन सकलकुशल... ११६

चैत्यवंदन विभाग ११७

स्तवन विभाग [११९ से १४४]

- सामान्य जिन स्तवन ११८
- श्री सीमंधर जिन स्तवन १२२
- श्री सिद्धगिरि के स्तवन १२४
- श्री ऋषभ-जिन के स्तवन १२७
- श्री अभिनंदन जिन स्तवन १२९
- श्री शांतिनाथ जिन स्तवन १३३
- श्री पार्श्वनाथ प्रभु के स्तवन १३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- श्री श्रेयांस जिन स्तवन १३६
- श्री महावीर प्रभु के स्तवन १३७
- गौतम विलाप स्तवन १३९
- रुडी ने रढीयाळी रे.... स्तवन १३८
- जिनोपदेश (थोय) १४१
- प्रेमनुं अमृत पावुं छे १४२

स्तुति (थोय) विभाग [१४४ से १४६]

- सज्झाय विभाग [१४६ से १५१]
- पच्चक्खाण का महत्त्व १५०
- गंठिसहियं पच्चक्खाण का महत्त्व १५१
- नवकारशी और शाम का पच्चक्खाण १५२
- चौबीस तीर्थंकरों के नामादि १५३
- आरती - मंगल दीवो १५४

कुंजर समा शूरवीर जे छे सिंहसम निर्भय वली गंभीरता सागर सभी जेना हृदयने छे वरी जेना स्वभावे सौम्यता छे पूर्णिमाना चन्दनी एवा प्रभु अरिहंतने पंचांग भावे हुं नमुं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारी दैनिक मंगल प्रार्थना

* वंदना

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्व साहूणं
एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।

अरिहंतो को नमस्कार करता हूं।
सिद्धों को नमस्कार करता हूं।
आचार्यों को नमस्कार करता हूं।
उपाध्यायों को नमस्कार करता हूं।
लोक में (विराजमान) सब साधुओं को नमस्कार करता हूं।
ये पांच नमस्कार समस्त पापों का नाश करने वाले हैं तथा सभी मंगलों में प्रथम मंगल है।

चार मंगल

चत्तारि मंगलं
अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं,

ये चार मंगल हैं।
अरिहंत मंगल हैं, सिद्ध मंगल हैं,
साधु मंगल हैं, केवलिप्रणीत धर्म मंगल है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार लोकोत्तम

चत्तारि लोगुत्तमा
अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो,

ये चार लोकोत्तम हैं,
अरिहंत लोकोत्तम हैं, सिद्ध लोकोत्तम हैं,
साधु लोकोत्तम हैं, केवलिप्रणीत धर्म लोकोत्तम है।

चार शरण

चत्तारि सरणं पवज्जामि।
अरिहंते सरणं पवज्जामि।
सिद्धे सरणं पवज्जामि।
साहू सरणं पवज्जामि
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

चार शरण मैं स्वीकारता हूं।
अरिहंतों की शरण स्वीकारता हूं, सिद्धों की शरण स्वीकारता हूं, साधुओं की शरण स्वीकारता हूं, केवलिप्रणीत धर्म की शरण स्वीकारता हूं।

त्रिकाल अवश्य कर्तव्य

अरिहंता मे सरणं,
सिद्धा मे सरणं,
साहू मे सरणं,
केवलिपण्णत्तो धम्मो मे सरणं।
गरिहामि सव्वाइं दुक्कडाइं,
अणमोएमि सव्वेसिं सुक्कडाइं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं अरिहंत भगवंतों की शरण ग्रहण करता हूं,
मैं सिद्ध भगवंतों की शरण ग्रहण करता हूं,
मैं साधु भगवंतों की शरण ग्रहण करता हूं,
मैं केवली भगवंतों द्वारा प्रकाशित धर्म की शरण ग्रहण करता हूं,
मैं सभी दुष्कृत्यों की निंदा करता हूं,
मैं सभी के सुकृतों की अनुमोदना करता हूं।

शयन पहलें की भावना

एगोऽहं णत्थि मे कोइ,
णाहमण्णस्स कस्सइ ।
एवं अदीणमणसो,
अप्पाण-मणुसासए ॥
एगो मे सासओ अप्पा,
नाणदंसण-संजुओ ।
सेसा मे बाहिरा भावा,
सव्वे संजोग-लक्खणा ॥
संजोगमूला जीवेण,
पत्ता दुक्ख-परम्परा ।
तम्हा संजोग-संबंधं,
सव्वं तिविहेण वोसिरियं ॥
अरिहंतो मह-देवो,
जावज्जीवं सुसाहूणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं,
इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वे जीवा कम्मवस,
चउदह राज भमन्त ।
ते मे सव्व खमाविया,
मुज्झ वि तेह खमन्त ॥

श्री नवपद स्तुति

[राग-मन्दाक्रान्ता]

श्री अरिहंतो सकलहितदा उच्च पुण्योपकारा,
सिद्धो सर्वे मुगतिपुरीना गामीने ध्रुवतारा... १

आचार्यो छे जिन धरमना दक्ष व्यापारी शूरा,
उपाध्यायो गणधरतणां सूत्रदाने चकोरा... २

साधु आन्तर अरिसमूहने विक्रमी थइ य दंडे,
दर्शन ज्ञानं हृदय-मल ने मोह-अंधार खंडे... ३

चारित्रे छे अघरहित हो जिंदगी जीव ठारे,
नवपद मांहे अनुप तप छे जे समाधि प्रसारे... ४

वन्दु भावे नवपद सदा पामवा आत्मशुद्धि,
आलंबन हो भुज हृदयमां द्यो सदा स्वच्छ बुद्धि... ५

(रचयिता - आचार्यश्री विजय भुवनभानुसूरिजी)

भावना

शिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारे जगत् का कल्याण हो, प्राणीगण दूसरों के हित करने में तत्पर रहें, दोषों का नाश हो, सर्वत्र सभी जीव सुखी हों।

क्षमापना

खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ॥

मैं सब जीवों से क्षमा मांगता हूं, समस्त जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। प्राणीमात्र के साथ मेरी मैत्री है। किसी के साथ मेरा वैरभाव नहीं।

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः।
मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे॥

जैनशासन की अनुमोदना

सर्व मङ्गल माङ्गल्यं, सर्व कल्याण कारणं,
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनम्।

सर्व मंगलो में माङ्गल्यरूप, सर्व कल्याणों का कारण,
समस्त धर्मो में प्रधान (ऐसा) जैनशासन जयवन्ता वर्तता है। (विजयी हुआ रहा है।)

प्रभु के सन्मुख बोलने योग्य स्तुतियाँ

(१)

पूर्णानन्दमयं महोदयमयं कैवल्यचिद्ङमयं,
रूपातीतमयं स्वरूप-रमणं स्वाभाविक-श्रीमयं।
ज्ञानोद्योतमयं कृपारसमयं स्याद्वाद-विद्यालयं,
श्री सिद्धाचल-तीर्थराजमनिशं वन्देऽहमादीश्वरम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२)

श्री आदीश्वर, शान्ति, नेमिजिनने, श्री पार्श्व, वीर प्रभु,
ए पांचे जिनराज आज प्रणमुं, हेते धरीने विभो।
कल्याणे कमला सदैव विमला बुद्धि पमाडो अति,
एवा गौतम स्वामी लब्धि भरिया, आपो सदा सन्मति॥

(३)

आव्यो शरणे तुमारा जिनवर करजो, आश पूरी अमारी,
नाव्यों भवपार मारो, तुम विण जगमां, सार ले कोण मारी।
गायो जिनराज आजे हरख अधिकथी परम आनन्दकारी,
पायो तुम दर्श, नासे भवभव-भ्रमणा, नाथ! सर्वे हमारी॥

(४)

ताराथी न समर्थ अन्य दीननो, उद्धारनारो प्रभु,
माराथी नहि अन्य पात्र जगमां, जोतां जडे हे विभु।
मुक्तिमंगल स्थान! तो य मुजने, इच्छा न लक्ष्मी तणी,
आपो सम्यग्रत्न श्याम जीवने, तो तृप्ति थाये घणी॥

(५)

हे प्रभो आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को, दूर हम से कीजिए।
लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें,
ब्रह्मचारी धर्मरक्षक, वीरव्रतधारी बनें॥

(६)

वीतराग हे जिनराज! तुज पद-पद्मसेवा मुज होजो,
भवभव विषे अनिमेष नयने आपनुं दर्शन थजो।
हे दयासिंधु विश्वबंधु दिव्य दृष्टि आपजो,
करी आपसम सेवक तणा संसार बंधन कापजो॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(७)

बहुकाल आ संसार सागर मां प्रभु हुं संचर्यो,
थइ पुण्यराशि एकठी त्यारे जिनेश्वर तुं मल्यो ।
पण पापकर्म भरेल में सेवा सरस नव आदरी,
शुभ योगने पाम्या छतां में मूर्खता बहुए करी ॥

(८)

भवजलधिमांथी हे प्रभो ! करुणा करीने तारजो,
ने निर्गुणीने शिवनगरनां शुभसदनमां धारजो ।
आ गुणी आ निर्गुणी एम भेद मोटा नव करे,
शशी सूर्य मेघ परे दयालु सर्वनां दुःख दूर हरे ॥

(९)

हे नाथ ! आ संसार-सागरे डूबता एवा मने,
मुक्तिपुरीमां लइ जवाने जहाज रूपे छो तमे ।
शिव-रमणीना शुभ संगथी अभिराम एवा हे प्रभो
मुज सर्व सुखनुं मुख्य कारण छो तमे नित्ये प्रभु ॥

(१०)

अंगूठे अमृत वसे लब्धितणा भंडार,
श्री गुरु गौतम समरीये वांछितफल दातार ।

(११)

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥

(१२)

सेवामाटे सुरनगरथी देवनो संघ आवे,
भक्ति-भावे सुरगिरिवरे, स्नात्र पूजा रचावे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाट्यारम्भे नमन करीने पूर्ण आनंद पावे,
सेवा सारी वीरविभु तणी को नवि चित्त लावे ॥

(१३)

संसाराम्भोनिधि-जल विषे डूबतो हुं जिनेन्द्र,
तारो सारो सुखकर भलो धर्म पाम्यो मुनीन्द्र ।
लाखो यत्नो यदि जन करे तोय ते ना हुं छोडुं,
नित्यं वीर प्रभु ! तुज कने भक्तिथी हाथ जोडुं ॥

(१४)

दर्शनं देव-देवस्य, दर्शनं पापनाशनम् ।
दर्शनं स्वर्ग-सोपानं, दर्शनं मोक्ष-साधनम् ॥

(१५)

जेना गुणोना सिंधुना बे बिन्दु पण जाणुं नहि,
पण एक श्रद्धा दिलमहीं के, नाथ सम को छे नहि ।
जेना सहारे क्रोडो तरिया, मुक्ति मुझ निश्चय सहि,
एवा प्रभु अरिहंतने, पंचांग भावे हुं नमुं ॥

---

१. श्री नमस्कार (नवकार) महामंत्र - सूत्र

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच-नमुक्कारो
सव्व पावप्पणासणो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवई मंगलं

शब्दार्थ

नमो	—	नमस्कार करता हूं,
अरिहंताणं	—	अरिहंतो को
सिद्धाणं	—	सिद्धों को
आयरियाणं	—	आचार्यों को
उवज्झायाणं	—	उपाध्यायों को
लोए	—	लोक में स्थित
सव्वसाहूणं	—	सब साधुओं को
एसो	—	ये
पंच नमुक्कारो	—	पांच नमस्कार
सव्व पाव	—	सब पापों का
प्पणासणो	—	नाश करने वाले (होते हैं)
मंगलाणं च सव्वेसिं	—	और सब मंगलों में
पढमं	—	प्रथम, श्रेष्ठ
हवई	—	है
मंगलं	—	मंगल

भावार्थ

अरिहंत भगवंतों को नमस्कार करता हूं। सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करता हूं। आचार्य महाराजों को नमस्कार करता हूं। उपाध्याय महाराजों को नमस्कार करता हूं। लोक में रहे हुए सभी साधु महाराजों को नमस्कार करता हूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये पांच नमस्कार सभी पापों का नाश करने वाले होते है तथा समस्त मंगलों में श्रेष्ठ मंगल है।

सूत्र परिचय

यह सूत्र महाप्रभावशाली है। क्योंकि,–

(१) प्रत्येक जैनशास्त्र का पठन करते समय प्रारंभ में इसे याद करना होता है।

(२) समस्त मंत्रों में यह उच्चतम मंत्र होने के कारण यह महामंत्र है।

(३) इसका एक बार भी जाप करने से ५०० सागरोपम की पापकर्मों की काल स्थिति टूट जाती है।

(४) परलोकगमन के समय जिसके हृदय में मैत्रीभाव और नमस्कार महामंत्र होते हैं, उसे सद्गति अवश्य प्राप्त होती है। इत्यादि।

इस सूत्र में 'नमो' पद से पंचपरमेष्ठी को नमस्कार किया गया है। परमेष्ठी को नमस्कार अर्थात् नमन करते समय हृदय में नम्रता धारण करके परमेष्ठी को भक्तिपूर्वक प्रतिष्ठित करना चाहिए। परमेष्ठी अर्थात् परम उच्च स्थान पर विराजमान। ये पांचो परमेष्ठी सब पापों का प्रतिज्ञापूर्वक त्याग करनेवाले होते हैं। उनके नाम अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। इन प्रत्येक को भावपूर्वक किया गया नमस्कार सब पापों का अत्यन्त नाश करता है। यह श्रेष्ठ मंगल है।

इनमें 'अरिहंत' का अर्थ है – आठ महाप्रतिहार्य की शोभा एवं सुरा-सुरेन्द्रकृत पूजा के योग्य। (ऐसे वीतराग सर्वज्ञ श्रीतीर्थंकर भगवान होते हैं, जो जैन धर्मशासन और गणधर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि चर्तुविध संघ की स्थापना करते हैं।)

सिद्ध अर्थात् सब कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त करने वाली आत्माएँ (संसार के जन्ममरण के चक्र से मुक्त)।

आचार्य अर्थात् पंचाचार का स्वयं पालन करते हुए उनका प्रचार करने वाले।

उपाध्याय अर्थात् जिनागम का अध्ययन करानेवाले।

साधु अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्षमार्ग की ही साधना करने वाले।

पंच परमेष्ठी के इन नमस्कारों में उनके गुणों-सुकृतों का संपूर्ण अनुमोदन होता है फलतः हिंसादि पापों (दुष्कृतों) की घृणा भी होती है। इन नमस्कार का फल क्या होता है? समस्त रागादि पापों का नाश। इसका प्रभाव यानी इसकी महिमा क्या? समस्त मंगलों में श्रेष्ठ मंगल। अतः प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में नमस्कार मन्त्र का स्मरण करना चाहिए। (कम से कम प्रथम पद का)

---

२. पंचिंदिय (गुरुस्थापना) सूत्र

पंचिंदिय - संवरणो,
तह नवविह - बंभचेरगुत्ति - धरो
चउव्विह - कसाय - मुक्को,
इअ अट्ठारस - गुणेहिं संजुत्तो ॥१॥
पंच - महव्वय - जुत्तो,
पंचविहायार - पालण - समत्थो,
पंच - समिओ ति - गुत्तो,
छत्तीस - गुणो गुरु मज्झ ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ

पंचिंदिय	—	पांच इन्द्रियों को
संवरणो	—	ढकनेवाले, वश करनेवाले
तह	—	तथा
नवविह	—	नौ प्रकार की
बंभचेर	—	ब्रह्मचर्य की
गुत्ति	—	गुप्ति या वाड
धरो	—	धारण करने वाले
चउव्विह	—	चार प्रकार के
कसाय	—	कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) से
मुक्को	—	मुक्त
इअ	—	इस प्रकार के
अट्ठारस गुणेहिं	—	अठारह गुणों से
संजुत्तो	—	संयुक्त
पंचमहव्वयजुत्तो	—	पांच महाव्रत से युक्त
पंचविहायार पालण समत्थो	—	पांच प्रकार के आचार के पालन में क्षम
पंचसमिओ	—	पांच समिति के धारक
तिगुत्तो	—	तीन गुप्ति के धारक
छत्तीस गुणो	—	इन ३६ गुणोंवाले
गुरु मज्झ	—	मेरे गुरु हैं।

भावार्थ

पांच इन्द्रियों के विषयों को वश में करने वाले, नौ प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की वाड यानी मर्यादा द्वारा ब्रह्मचर्य के पालक, चार प्रकार के कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) से मुक्त, इस प्रकार १८ गुणोंवाले, अहिंसादि पांच महाव्रतों का पालन करनेवाले, (ज्ञानाचार आदि) पांच प्रकार के आचार के पालन में समर्थ, (ईर्यासमिति आदि) पांच समिति एवं (मनोगुप्ति आदि) तीन गुप्ति के धारक, – इस प्रकार कुल ३६ गुणों से युक्त मेरे गुरु हैं।

सूत्र - परिचय

सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, उपधान, आदि, ये धर्मक्रियायें यानी धर्मानुष्ठान हैं। इन्हें गुरु की उपस्थिति में, गुरु की आज्ञा से, तथा गुरु के प्रति विनयभाव को रखते हुए ही करना चाहिये। गुरु की अनुपस्थिति में धर्म-क्रियाओं को छोड़ना नहीं चाहिये, क्योंकि आत्महित के लिए येही समर्थ होती हैं। इसीलिए शास्त्रकार, 'गुरुविरहम्मी गुरुठवणा' इस सूत्र द्वारा, गुरु भगवन्तो का योग न मिलने पर, ज्ञान-दर्शनचारित्र के किसी भी उपकरण में गुरु की स्थापना करने का फरमान करते हैं। ऐसा करके यह समझना चाहिए की अपनी दृष्टि सन्मुख स्थापना-गुरु साक्षात् गुरु रूप विराजमान है। उनका आदेश प्राप्त कर तथा उचित विनयभाव रखकर धर्मानुष्ठान यानी धर्मक्रिया करनी चाहिए।

एक चौकी पर धर्मपुस्तक अथवा नवकारवाली रखकर उसमें गुरु को आमंत्रण (गुरु के आगमन-स्थापन) करने के उद्देश्य से, उसके सन्मुख दांया हाथ रख करके नवकार मंत्र तथा पंचिंदिय सूत्र बोलने चाहिए। इससे गुरु की स्थापना होती है। क्योंकि इस सूत्र का उच्चारण गुरु-स्थापना के निमित्त होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, अतः इसे गुरु-स्थापना सूत्र भी कहते हैं।

इस सूत्र में गुरु के १८ निवृत्ति धर्मों तथा १८ प्रवृत्ति धर्मों, कुल ३६ गुणों का निर्देश हैं। (१) १८ निवृत्ति धर्म ये हैं, – पांच इन्द्रियों का संवर अर्थात् पांचों इन्द्रियों को इष्ट विषयों की रागयुक्त प्रवृत्ति से तथा अनिष्ट विषयों के उद्वेग से रोकना। ब्रह्मचर्य की नौवाड में स्त्री - पशु - नपुंसकवाले स्थानों में रहने का त्याग इत्यादि, तथा ४ कषायों को रोकना। (२) १८ प्रवृत्ति - धर्म ये हैं,– पांच महाव्रतों के पालन में प्रत्येक व्रत की ५-५ भावनासहित प्रवृत्ति रखना। एवं ज्ञानाचार-दर्शनाचार-चारित्राचार, तपाचार-वीर्याचार- ये पांच आचार के प्रकारों में प्रवृत्ति रखना। ऐसे ही ईर्यासमिति आदि पांच समितियों एवं मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियों के पालन में प्रवृत्त होना।

३. खमासमणुं (पंचांग प्रणिपात) सूत्र

इच्छामि खमासमणो वंदिउं,
जावणिज्जाए निसीहिआए,
मत्थएण वंदामि!

शब्दार्थ

इच्छामि	– चाहता हूँ
खमासमणो	– हे क्षमाश्रमण !(क्षमाप्रधान साधु !)
वंदिउं	– वंदना करने के लिए,
जावणिज्जाए	– सारी शक्ति लगाकर (आपकी यापनिका-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुशल पूछ कर)

निसीहिआए — मेरे दोष का प्रतिक्रमण करके (आपके प्रति आशातनादि दोषों का त्याग यानी 'मिच्छामि दुक्कडं' करके)

मत्थएण वंदामि— मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ

हे क्षमाश्रमण। मैं आपकी कुशलता आदि की पृच्छा तथा आप के प्रति अपने दोषों का प्रतिक्रमण करके आपको वंदना करना चाहता हूँ।

मस्तकादि पंचांग को झुकाकर, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मस्तक, दो घुटण, दो हाथ, ये पाँच अंग को पंचांग कहा जाता है।

सूत्र--परिचय

इस सूत्र से 'क्षमाश्रमण' गुरु को वंदना की जाती है। 'क्षमा-श्रमण' अर्थात् क्षमादि गुणवाले महातपस्वी गुरु अथवा तीर्थंकर, गणधरादि। इस सूत्र में गुरु को तथा तीर्थंकर परमात्मादि को वंदना की गई है। क्रिया में वंदन अर्थात् पंचांग-प्रणिपात मुख्य है। अत: इसके सूत्र को प्रणिपात-सूत्र कहते हैं।

पहले खड़े रहकर दोनों हाथ जोड़कर 'इच्छामि खमासमणो वंदिउं, जावणिज्जाए निसीहिआए' इतना बोलने के पश्चात् नीचे घुटने टेककर दोनों घुटनों के बीच में दोनों हाथ रख आगे मस्तक, इन पांचों अंगो से भूमि का स्पर्श करके 'मत्थएण वंदामि' कहते हुए वंदना की जाती है। इसे 'स्तोभ-वंदना' सूत्र कहते हैं।

आगे 'वंदना सूत्र' आएगा। उसे 'बृहद्वंदना सूत्र' कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें यहाँ 'खमासमणुं' सूत्र में कहे हुए-- (१) 'जावणिज्जाए' व (२) 'निसीहिआए' विस्तारपूर्वक हैं। (१) 'अहो कायं काय संफासं' पद से, गुरु चरणों का मस्तक से स्पर्श करने द्वारा वंदना करने व क्षमायाचने के पश्चात् 'बहुसुभेण भे' से 'जवणिज्जं च भे' तक 'जवणिज्जा = यापनीयता'-सुखशाता पूछी जाती है। तत्पश्चात् (२) 'खामेमि खमा०' से 'वोसिरामि' तक 'निसीहिया' बोलकर अर्थात् गुरु के प्रति लगे हुए दोषों का निषेध यानी त्याग अर्थात् **प्रतिक्रमण-निंदा-गर्हा** की जाती है। उसका संक्षिप्त स्वरूप इस 'खमासमणु' (स्तोभवंदन) सूत्र में है।

---

४. 'गुरु - सुखशाता - पृच्छा सूत्र'

(गुरु से सुखशाता पूछने का सूत्र)

इच्छकार सुहराई? (सुहदेवसि?)
सुख-तप?
शरीर निराबाध?
सुखसंजमजात्रा निर्वहो छो जी?
स्वामि! शाता छे जी?
आहार पानी का लाभ देना जी.

शब्दार्थ

"इच्छकार"-हे गुरू महाराज! आपकी इच्छा हो तो मैं पूछुं?

१ 'सुहराई?'-आपकी रात्रि सुखपूर्वक बीती?
'सुहदेवसि?'-आपका दिन सुखपूर्वक व्यतीत हुआ?

२ 'सुखतप'?-आपकी तपस्या सुखपूर्वक हो रही है?

३ 'शरीर निराबाध'?-आपका शरीर पीड़ारहित है न?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४ 'सुखसंजम जात्रा निर्वहो छोजी?'-आपकी संयम यात्रा अर्थात् चारित्र-पालन सुखपूर्वक चल रहा है?

५ 'स्वामि! शाता छेजी'?-हे स्वामिन्! सब प्रकार से आप को सुख-शांति है?

आहारपानी का लाभ देनाजी-कृपया मुझे गोचरी = आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, औषध आदि का लाभ देनाजी।

भावार्थ तथा सूत्र--परिचय

'गुरु को सुखशाता--पृच्छा :'

इस सूत्र द्वारा त्यागी गुरुमहाराज की साधना तथा शरीर को सुखरूपता के साथ साथ सर्वाङ्गीण सुखशाता पूछी जाती है। उन्हें यह भी विनंती की जाती है कि वे हमारे घर पदार्पणकर आहार-पानी ग्रहण करें। अतः इस सूत्र का अपर नाम 'सुगुरु सुखशाता पृच्छा सूत्र' है। एक अन्य नाम 'गुरु--निमन्त्रण सूत्र' भी है।

इसमें 'इच्छकार' (अर्थात् 'इच्छाकार) पद से, गुरु से जब पृच्छा करनी है तो पृच्छा के लिए, गुरु की इच्छा जाननी चाहिए। तत्पश्चात् पृच्छा की जाए। इस प्रकार इच्छा पूछने को 'इच्छाकार सामाचारी (आचार)' कहते हैं।

हे गुरुदेव! आपकी आज्ञा-इच्छा हो तो पूछूँ कि --

१. आपकी गतरात सुख पूर्वक व्यतीत हुई? आपका दिवस सुखपूर्वक बीता? [प्रातः १२ बजे तक पूछा जाए तो 'सुहराई' कहना चाहिए। तत्पश्चात् पूछना हो तो 'सुहदेवसि' कहना चाहिए।] इस प्रकार के पाँच प्रश्न हैं। (२) दूसरा प्रश्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि क्या आपकी तपस्या निर्विघ्न चल रही है? (३) तीसरा है कि क्या आपके शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा या दुःख तो नहीं है न? (४) चौथा प्रश्न है कि क्या आपकी संयमसाधना सुखपूर्वक चल रही है? (५) पाँचवा है कि क्या आपको सर्व प्रकार से या मन से सुखशांति (शाता) है?

इन प्रश्नों को पूछने का कारण यह है कि दिन में अथवा रात्रि में कोई बाधा या विघ्न उपस्थित हुआ हो, तप में किसी प्रकार की रुकावट हो, शरीर में रोगादि की वेदना हो, विरोधियों की ओर से संयमसाधना में संकट उपस्थित किया गया हो, तो श्रावक इनके निराकरण का प्रयत्न करे, तथा साधुसेवा का महान लाभ ले। [अपने लिए शिष्य अथवा भक्त की इस सुखचिंता को जानकर गुरुदेव सुखशाता के प्रश्न का उत्तर देते हैं, 'देव-गुरु पसाय' अर्थात् देवाधिदेव और गुरु की कृपा-प्रभाव से सुखशांति है।]

गुरुदेव को किसी प्रकार की अशाता अथवा अशांति नहीं है, यह जानकर भक्त गुरु को विनंती करता है कि हे गुरुदेव! आप हमारे यहाँ पधारे तथा आहार-पानी आदि ग्रहणकर मुझे धर्म का लाभ प्रदान करने की कृपा करे।

इसके उत्तर में गुरु महाराज फरमाते हैं—

'वर्तमान जोग' अर्थात् जैसा अवसर होगा।

अब्भुट्ठिओ [क्षामणक] सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्!
अब्भुट्ठिओहं अब्भिंतर देवसिअं (राइअं) खामेउं?
इच्छं, खामेमि देवसिअं (राइअं)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जं किंचि अपत्तिअं परप्पत्तियं,
भत्ते, पाणे,
विणए, वेयावच्चे,
आलावे, संलावे,
उच्चासणे, समासणे,
अन्तरभासाए, उवरिभासाए,
जं किंचि मज्झ विणय-परिहीणं
सुहुमं वा बायरं वा,
तुब्भे जाणह,
अहं न जाणामि,
तस्स मिच्छामि दुक्कडं.

शब्दार्थ

इच्छाकारेण	—	आपकी इच्छा से
संदिसह	—	आदेश दो
भगवन्	—	हे भगवंत।
अब्भुट्ठिओहं	—	मैं उपस्थित हुआ हूं
अब्भिंतर देवसिअं	—	दिन विषयक अपराध की
(अब्भिंतर राइअं	—	रात के अपराध की
खामेउं	—	क्षमा याचना के लिये;
इच्छं	—	स्वीकार करता हूं;
खामेमि	—	क्षमा माँगता हूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जं किंचि — जो कोई
अपत्तिअं — आप को अप्रीतिकर
परप्पत्तियं — आप को अत्यंत अप्रीतिकर
भत्ते — आहार विषयक
पाणे — पानी विषयक
विणये — विनय में
वेयावच्चे — सेवा में
आलावे — एकबार की बातचीत में
संलावे — अनेक बार की बात में
उच्चासणे — आपसे ऊँचे आसन पर (बैठने में)
समासणे — आप के समान आसन पर (बैठने मे)
अंतर भासाए — आपके और के साथ बोलते हुए बीच में ही बोलने में
उवरिभासाए — आपके बोलने के बाद अधिक बोलने में
मज्झ — मेरा
विणय परिहीणं — विनय-रहित (विनय का भंग करके)
सुहुमं वा बायरं वा — सूक्ष्म अथवा स्थूल दोष-अपराध (हुआ)
तुब्भे जाणह — आप जानते हैं
अहं न जाणामि — मैं न जानता हूँ
तस्स मिच्छामि दुक्कडं — वह मेरा अपराध दुष्कृत मिथ्या हो।

भावार्थ

हे गुरु भगवन्! दिन और रात्रि में मेरे द्वारा हुए अपराधों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की क्षमा याचना करने के लिए मैं उपस्थित हुआ हूँ। अतः आप अपनी इच्छा से आज्ञा प्रदान करे ताकि मैं अपने अपराधो को खमाऊं। उनकी क्षमा याचना करूं (गुरु महाराज कहते हैं-खमाइए।)

गुरु की आज्ञा प्राप्त होने पर शिष्य भक्त कहता है — दिवस अथवा रात्रि की अवधि में मेरे द्वारा जो कोई आपको अप्रीतिकर (आपके लिए अरुचिकर) विशेषरूपेण अप्रीतिकर कार्य हुआ हो, इसी प्रकार भोजन के विषय में, पानी के विषय में, विनय के पालन में, सेवा करने के विषय में, एक या अनेक बार बातचीत करते हुए, आपकी अपेक्षा ऊंचे आसन पर अथवा आपके समान आसन पर बैठने में, आपके दूसरे व्यक्ति से वार्तालाप करने के समय बीच में बोलने में, बाद में बोलने में, विनय का उल्लंघन करते हुए, मुझसे छोटा या बड़ा अपराध हुआ हो और इस प्रकार विनयभाव की उपेक्षाकर अपराध करने का मुझे ज्ञात न हो परन्तु आप उसे जानते हों, मैं अपने ऐसे अपराधों के लिए क्षमार्थी हूं। मैं चाहता हूं कि मेरे ऐसे अपराध और अविनय के दुष्कृत मिथ्या हो।

सूत्र--परिचय

शिष्य अथवा भक्त स्वतः प्रेरणा से गुरु के समक्ष सादर हाथ जोड़कर खड़ा रहता है, अतः इस सूत्र को 'अब्भुट्ठिओमि' सूत्र भी कहते हैं। इसके द्वारा शिष्य किंवा भक्त अपने अपराधों की क्षमा मांगता है, अतः इसे 'गुरू क्षमापना' सूत्र भी कहा जाता है ।ध्यान में रहे क्षमापना = क्षमा मांगना।

इस सूत्र का प्राण शब्द है — 'खामेउ' अर्थात् मैं खमाऊं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षमा मांगू ? 'खामेमि' अर्थात् मैं खमाता हूं--क्षमा मांगता हूं।

क्षमा करना अर्थात् दूसरे के अपराध को समताभाव से सहन कर लेना, धैर्य रखना, उदारता दिखाना, करुणा करनी, बैर रखने की प्रवृत्ति का त्याग करना।

क्षमा मांगने का भाव है कि सामने वाले व्यक्ति से अपने अपराध को क्षमा कर देने की याचना करना, अपने पर करुणा और उदारता करने की प्रार्थना करना, ऐसा निवेदन करना कि वह व्यक्ति हमारे अपराधों के कारण हमारे प्रति द्वेष--एतराज न रखे, प्रत्युत उन्हें क्षमा कर दे।

इस सूत्र के माध्यम से अपने अपराधों को याद करके गुरु को बताकर, गुरु के समक्ष उन्हें स्वीकृत कर, शुद्ध हृदय से पश्चातापपूर्वक दुखित हृदय से क्षमा याचना की जाती है। तत्पश्चात् उन अपराधों को दूर करने के लिये तथा गुरु के प्रति उचित विनय प्रगट करने के लिए प्रवृत्ति की जाती है।

गुरुवंदन की विधि

विनयपूर्वक दो बार 'खमासमण' सूत्र बोलकर गुरु महाराज को पंचाङ्ग प्रणिपात से वंदना करनी चाहिए। पश्चात् 'सुगुरु सुखसातापृच्छा' सूत्र बोलकर उन्हे पंचप्रश्नपूर्वक सुखसाता पूछनी चाहिये। फिर 'अब्भुट्ठिओहं' सूत्र द्वारा दाहिना हाथ जमीन पर स्थापन कर गुरु से क्षमायाचना करनी चाहिये।

(नोट : यदि गुरु गणी, पंन्यास, उपाध्याय अथवा आचार्य हों तो सुखशाता पूछकर पुनः खमासमण पढ़कर ही वंदना करव 'अब्भुट्ठिओऽहं' पढ़ना चाहिए। सारांश, पदस्थ को रू खमां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधिपूर्वक गुरुवंदना करने के उपरांत गुरु-भगवंत से यथाशक्ति नवकारशी आदि तप का पच्चक्खाण लेना चाहिए। वे जब 'पच्चक्खाइ' बोले, तब उसे करबद्ध हो मन में धारना और 'पच्चक्खामि' कहकर स्वीकृत करना चाहिए।

गुरुवंदन

गुरुवंदन तीन प्रकार से होता है : १. फिट्टा वंदन, २. थोभ वंदन, तथा ३. द्वादशावर्तवंदन। प्रथम फिट्टावंदन मस्तकादि झुकाने से, द्वितीय थोभवंदन पंचाङ्ग प्रणिपात (खमासमणा) देने से, तीसरा द्वादशावर्त वंदन 'अहोकायं काय संफासं' वाले सूत्र से होता है [गुरुवंदन भाष्य]

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर तथा रत्नाधिक इन पांचों को कर्म की निर्जरा के उद्देश्य से वंदन करना चाहिए। [प्रवचन सारोद्धार]

गुरुवंदन की महिमा

पूज्य वंदनीय श्री गौतमस्वामी ने भगवान् महावीर देव से विनयपूर्वक पूछा—'हे भगवन्! गुरुवंदन करने से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है?'

तरणतारण भगवान् ने फरमाया—'हे गौतम! ज्ञानावरणीय आदि कर्म गाढ बंधन से बांधे हुए हो तो वे शिथिल बंधनवाले, दीर्घ स्थितिवाले हों तो अल्प अवधिवाले, तीव्र रसवाले अशुभ कर्म मंद रसवाले तथा बहुत प्रदेशोंवाले हो तो अल्प प्रदेशोंवाले हो जाते हैं। फलतः जीव अनादि अनन्त संसार रूपी अटवी में दीर्घ समय तक परिभ्रमण नहीं करता।' अंत में मोक्ष पाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'हे गौतम ! गुरुवंदन द्वारा जीव नीचगोत्रकर्म का क्षय करता है, उच्चगोत्रकर्म को बाँधता है तथा अप्रतिहत (जिसका उल्लंघन संभव नहीं ऐसे आज्ञा के) फल से युक्त सौभाग्य नामकर्म का उपार्जन भी करता है।" [धर्मसंग्रह]

'गुरु' उसे कहते हैं कि जो (१) शुद्ध धर्म का ज्ञाता हो, (२) उसका आचरण करनेवाला हो, (३) सदा उसी में तल्लीन हो, और (४) जीवों को उसी शुद्ध आचार का उपदेश देनेवाला हो; एवं

जो जीवनपर्यंत सर्वथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के महाव्रतों का पालन करता हो;

उसे ही 'गुरु' कहते हैं। इस प्रकार का पञ्चमहाव्रतधारी गुरु धर्मज्ञ, धर्मकर्ता, धर्मपरायण तथा परमगुरु परमात्मा द्वारा प्ररूपित तत्त्व और मोक्षमार्ग रूप धर्म का उपदेष्टा होता है।

हमारे अज्ञान के हर्ता, हमारे धर्मानुष्ठान के प्रेरक, हमारी आत्मा की उन्नति के लिए दिशानिर्देशक उपकारी गुरु-भगवान को सविनय तथा शास्त्रोक्त विधि से प्रातः व सायं वंदना करनी चाहिए।

परमगुरु परमात्मा द्वारा कथित ऐसे गुरु को प्रणाम करने से, उनका विनय करने से, उनकी सेवा–भक्ति करने से, हम परमात्मा के निकट पहुँच जाते हैं। साधना से प्रेरणा प्राप्त होती है तथा गुरुजी का निर्मल आशीर्वाद प्राप्त होता है। इस साधना तथा आशीर्वाद से मन शुद्ध और प्रसन्न होता है। इसके अतिरिक्त गुरु के आशीर्वाद से हमारा मनोबल भी दृढ़ बनता है तथा प्रत्येक शुभ काम में सफलता प्राप्त होती है।

परमोपकारी गुरु भगवंतो को मन, वचन, काया से वारंवार नमस्कार हो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. इरियावहियं (प्रतिक्रमण) सूत्र

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्!
इरियावहियं पडिक्कमामि?
(गुरु कहते हैं 'पडिक्कमेह')
इच्छं, इच्छामि पडिक्कमिउं ॥ १ ॥
इरियावहियाए विराहणाए॥ २ ॥
गमणागमणे॥ ३ ॥
पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे,
ओसा-उत्तिंग-पणग-दगमट्टी-
मक्कडासंताणा-संकमणे॥ ४ ॥
जे मे जीवा विराहिया॥ ५ ॥
एगिंदिया, बेइंदिया,
तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया॥ ६ ॥
अभिहया, वत्तिया,
लेसिया, संघाइया,
संघट्टिया, परियाविया,
किलामिया, उद्दविया,
ठाणाओ ठाणं संकामिया,
जीवियाओ ववरोविया,
तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ

हे गुरु भगवन्! आपकी इच्छा से मुझे गमनागमन की क्रिया में (अथवा साध्वाचार के उल्लंघन में) हो गयी विराधना से प्रतिक्रमण करने की (पीछे लौटने की) आज्ञा प्रदान करो।

गुरुजी कहते हैं--प्रतिक्रमण करो। शिष्य उत्तर देता है--मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ और अब मैं गमनागमन विषयक विराधना का प्रतिक्रमण शुद्ध आन्तरिक भाव से प्रारंभ करता हूँ।

मार्ग पर जाते अथवा आते हुए जानते या अजानते कोई त्रसजीव, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), बीज (सजीव धान्य), हरि वनस्पति, ओस का पानी, चींटी का बिल, शैवाल, कच्चा पानी, मिट्टी अथवा मकडी का जाला आदि मेरे द्वारा दबाये गए, इनमें यदि किसी जीव की विराधना की हो, उदाहरणरूप जीवों में किसी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय जीव को किसी प्रकार पीड़ा की हो, जैसे,--किसी जीव को मैंने ठोकर लगाई हो अथवा कुचला हो, धूल से ढका हो, परस्पर रगड़ा हो, घिसा हो, समूह में इकट्ठा किया हो, उसे दुःख हो इस तरह से छुआ हो, भयभीत किया हो, अंगभंग किया हो, मृतसमान किया हो, एक स्थान से दूसरे स्थान पर धकेल दिया हो, प्राणहीन किया हो, इत्यादि बातों में हुआ मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो।

सूत्र - परिचय

इस सूत्र में गमनागमन आदि में हुई जीवों की विराधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकमणे — पर आक्रमण करने में--कुचलने में
जे मे जीवा — मेरे द्वारा जो जीव
विराहिया — पीड़ित हुए
एगिंदिया — एक इन्द्रियवाले जीव
बेइंदिया — दो इन्द्रियवाले जीव
तेइंदिया — तीन इन्द्रियवाले जीव
चउरिंदिया — चार इन्द्रियवाले जीव
पंचिंदिया — पाँच इन्द्रियवाले जीव
अभिहया — पाँव टकराया, आक्रमण किया
वत्तिया — उलटे किए, धूल से ढके गए
लेसिया — परस्पर रगड़े गए,
संघाइया — इकट्ठे किए गए,
संघट्टिया — छूए गए
परियाविया — व्यथित किए गए
किलामिया — अंगभंग किए गए
उद्दविया — मृत प्रायः किये गये
ठाणाओ ठाणं — एक जगह से दूसरी जगह
संकामिया — फिरे गए, धकेले गए
जीवियाओ ववरोविया— प्राणरहित किए गए
तस्स — उस विराधना का
मिच्छा — मिथ्या हो
मि — मेरा
दुक्कडं — दुष्कृत्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ

हे गुरु भगवन्! आपकी इच्छा से मुझे गमनागमन की क्रिया में (अथवा साध्वाचार के उल्लंघन में) हो गयी विराधना से प्रतिक्रमण करने की (पीछे लौटने की) आज्ञा प्रदान करो।

गुरुजी कहते हैं—प्रतिक्रमण करो। शिष्य उत्तर देता है--मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करता हूँ और अब मैं गमनागमन विषयक विराधना का प्रतिक्रमण शुद्ध आन्तरिक भाव से प्रारंभ करता हूँ।

मार्ग पर जाते अथवा आते हुए जानते या अजानते कोई त्रसजीव, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय), बीज (सजीव धान्य), हरि वनस्पति, ओस का पानी, चींटी का बिल, शैवाल, कच्चा पानी, मिट्टी अथवा मकडी का जाला आदि मेरे द्वारा दबाये गए, इनमें यदि किसी जीव की विराधना की हो, उदाहरणरूप जीवों में किसी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय जीव को किसी प्रकार पीड़ा की हो, जैसे,--किसी जीव को मैंने ठोकर लगाई हो अथवा कुचला हो, धूल से ढका हो, परस्पर रगड़ा हो, घिसा हो, समूह में इकट्ठा किया हो, उसे दुःख हो इस तरह से छुआ हो, भयभीत किया हो, अंगभंग किया हो, मृतसमान किया हो, एक स्थान से दूसरे स्थान पर धकेल दिया हो, प्राणहीन किया हो, इत्यादि बातों में हुआ मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो।

सूत्र - परिचय

इस सूत्र में गमनागमन आदि में हुई जीवों की विराधना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का स्मरण करके उसका प्रतिक्रमण या पश्चात्ताप किया जाता है। अतः इसे 'इरियावहियं सूत्र' कहते हैं। इसे प्रतिक्रमण सूत्र भी कहा जाता है। कारण यह है कि इस में घटित हुए जीव-क्लेश और साध्वाचार के उल्लंघन के पाप के प्रति घृणा और उससे निवृत्त होने की क्रिया का वर्णन है। प्रतिक्रमण-सूत्र में संताप व क्षमायाचना है — जैसे न्यायाधीश के समक्ष क्षमायाचना के लिए हत्यारा भी तीव्र संताप व गद्‌गद हृदय से अपराध स्वीकार करके क्षमायाचना करता है वैसे ही यहाँ गुरु के समक्ष अपने द्वारा की गई हिंसा का तीव्र संताप व गद्‌गद हृदय से स्वीकार करने व 'मिच्छामि दुक्कडं' करना है; इसके लिए यह सूत्र है।

इस सूत्र का सारांश यह है कि हमारा कामकाज आना जाना, बोलना चालना, विचार करना, किसी भी अंश में ऐसा न होना चाहिए कि जिससे किसी भी सूक्ष्म या बादर प्राणी को किसी भी प्रकार मन, वचन, काया से दुःख पहुँचे। हमारे जीवन का दैनिक व्यवहार और विचार ऐसा न हो जिससे किसी भी जीव को पीडा या त्रास हो। किन्तु सांसारिक जीवन ही कुछ इस प्रकार का है कि इसमें ऐसा पाप हो जाया करता है। साधु--जीवन में भी प्रमादवश सूक्ष्म जीवों की विराधना हो जाती है। साध्वाचार के भंग से भी पाप का प्रादुर्भाव होता है। इस सूत्र द्वारा उसकी शुद्धि करने के पश्चात् ही अन्य धर्म-क्रिया कर सकते हैं। अतः इस सूत्र का प्रयोग सामायिक, प्रतिक्रमण, चैत्यवंदन आदि क्रियाओं के प्रारंभ में किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सूत्र का प्रधान सूर यह है कि हमारे द्वारा जानते हुए या न जानते हुए सूक्ष्म जीव-विराधना भी हुई हो तो उसे भी पाप समझा जाए। पाप के प्रति घृणा-ग्लानि हो कर, हृदय-संताप तथा पाप का सच्चे हृदय से पश्चाताप किया जाए। इस सूत्र में वर्णित 'मिच्छामि दुक्कडं' पद प्रतिक्रमण का मूल आधार है। अतः इसका बार बार मनन करना चाहिए। इस पद का तात्पर्य है कि यदि हमने अपराध किया है तो उसके प्रति हमारे हृदय में अतीव घृणा है। साथ ही पाप करनेवाली अपनी आत्मा के प्रति भी हमारे हृदय में बड़ी भारी घृणा है कि,-खेद है कि,-मैं कैसा दुष्ट अधम, कि मैंने यह पाप किया?' तदुपरांत पाप के विषय में पश्चात्तापपूर्वक क्षमा मांगे और पाप की निवृत्ति की इच्छा करें।

पोषध अथवा चारित्र--जीवन में कहीं आये गये तो नहीं, तथा उसके कारण जीव विराधना न हुई हो, तो भी नवीन क्रिया के प्रारंभ में 'इरियावहियं' किया जाता है। इससे सूचित होता है कि यदि जीव-विराधना न भी हुई हो, परन्तु साध्वाचार का लेशमात्र भी उल्लंघन हुआ हो तो उस पाप की शुद्धि करने के हेतु भी यह सूत्र उपयोगी है। अतएव यहां 'इरियावहियाए विराहणाए' पद से धर्मसंग्रह आदि शास्त्र जीव-विराधना के समान साध्वाचार के भंग को भी चारित्रविराधना रूप में स्वीकृत करके उसका भी प्रतिक्रमण कराते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. 'तस्स उत्तरी करणेणं' सूत्र

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं,
विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं,
पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए,
ठामि काउस्सग्गं ॥ १ ॥

शब्दार्थ

तस्स	—	उसके (जिस विराधना का प्रतिक्रमण किया उसके)
उत्तरीकरणेणं	—	स्मृतिकरण आलोचनादि उत्तरीकरण करने द्वारा
पायच्छित्तकरणेणं	—	प्रायश्चित्त करने द्वारा
विसोहीकरणेणं	—	विशुद्धि करने द्वारा
विसल्ली करणेणं	—	शल्य दूर करने द्वारा
पावाणं कम्माणं	—	पापकर्मों का
निग्घायणट्ठाए	—	नाश करने के लिए
ठामि काउस्सग्गं	—	मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

भावार्थ

पूर्वोक्त जीव-विराधना अथवा साध्वाचार-भंग के फलस्वरूप उपार्जित किये पापकर्मों के संपूर्ण क्षय के लिए, उसके स्मरण-आलोचना से, प्रायश्चित्त से, विशेष शुद्धि से, और निःशल्यता से साध्य कायोत्सर्ग में मैं स्थिर होता हूँ।

स्मरण में विराधना को स्मृतिपट व आलोचना में लाकर पश्चात्ताप आदि पूर्वक कायोत्सर्ग में रहना है वह पापकर्मों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाश करने के लिए करना। यहाँ ध्यान रहे कि 'उत्तरीकरणेणं' आदि चार पद हेतुसंपदा के पद है, एवं 'पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए', ये निमित्तसंपदा के पद हैं। यहाँ हेतु=साधन, निमित्त=प्रयोजन। ये साधनादि किसके? तो कि कायोत्सर्ग के।

'अरिहंत चेइयाणं' सूत्र मे इससे उल्टा है, अर्थात् पहले 'वंदणवत्तियाए' आदि छःपदों की निमित्तसंपदा बताई, बाद में ५ पदों की हेतुसंपदा 'सद्धाए मेहाए_ आदि बताई।

सूत्र परिचय

शरीर के किसी भाग में गहराई तक काँटा, काँच का टुकड़ा, लोहे की कील आदि चुभ गये हो, तो वैद्य (१) पूरी तरह उसका पता लगाता है। तत्पश्चात् (२) शरीर के जिस भाग में चुभा हो उसके धाव पर मलहम आदि औषधी लगाता है। इससे सूजन का बढना रुक जाता है, और अन्दर रहा हुआ काँटा आदि शीघ्र बाहर आ जाता है। इसके साथ ही (३) रोगी को उचित पाचक चूर्ण दिया जाता है। जिससे पेट साफ हो जाए और भीतर का रक्त उस काँटे या टुकडे के कारण विकृत न हो। तथा (४) अंत में जब काँटा या कण ऊपर आए उस समय उसे सरलता से खींच लिया जाता है। इस प्रकार काँटा निकालने के चार क्रमिक विधान हैं-निदान, प्रतिकार, सफाई और निःशल्यता।

इसी प्रकार पूर्व के 'इरियावहियं' सूत्र में कथित विराधना आदि से आत्मा में गहराई तक प्रविष्ट हुए पाप को चार उपायो से नष्टकर आत्मा को शुद्ध बनाने की विधि इस 'तस्सउत्तरी' सूत्र में निर्दिष्ट की गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वप्रथम पश्चात्ताप से पाप को ऊपर लाया जाता है अर्थात् स्मरण व आलोचन किया जाता है। बाद में पापघृणा तथा पाप के मूलभूत दोष के प्रति घृणाभाव के साथ प्रायश्चित्त कर के आत्मा की मूलतः विशुद्धि की जाती है ताकि पाप का शल्य न रहे, और पाप निर्मूल नष्ट हो जाए। अंत में किया जाता कायोत्सर्ग पाप की शेषभूत अशुद्धि को दूर करके आत्मा को पापमुक्त कर देता है।

इस सूत्र में प्रथम पद 'तस्स उत्तरीकरणेणं' है अतः इसे 'तस्स उत्तरीकरणेणं' 'तस्स उत्तरी ' सूत्र भी कहते हैं।

७. अन्नत्थ सूत्र

अन्नत्थ ऊससिएणं,
नीससिएणं, खासिएणं,
छीएणं, जंभाइएणं,
उड्डुएणं, वाय-निसग्गेणं,
भमलीए, पित्तमुच्छाए ॥१॥
सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं,
सुहुमेहिं खेल-संचालेहिं
सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं, ॥२॥
एवमाइएहिं आगारेहिं
अ-भग्गो, अ-विराहिओ,
हुज्ज मे काउस्सग्गो ॥ ३ ॥
जाव, अरिहंताणं भगवंताणं
णमुक्कारेणं न पारेमि ताव ॥४॥
कायं ठाणेणं मोणेणं
झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ

अन्नत्थ	—	(इन अपवादों से) अतिरिक्त स्थान में,–
ऊससिएणं	—	श्वास लेते हुए
नीससिएणं	—	श्वास छोडते हुए
खासिएणं	—	खांसी आने पर
छीएणं	—	छींक आने पर
जंभाइएणं	—	जम्हाई (बगासुं) आने पर
उड्डुएणं	—	डकार आने पर
वाय निसग्गेणं	—	अधोवायु निकलने के समय
भमलीए	—	चक्कर आने पर
पित्त मुच्छाए	—	पित्त की मूर्छा के समय
सुहुमेहिं	—	सूक्ष्म रीति से
अंगसंचालेहिं	—	अंग हिलते समये
सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं	—	सूक्ष्म कफसंचार के समय
सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं	—	सूक्ष्म दृष्टिस्पन्दन के समय
एवमाइएहिं	—	इत्यादि क्रियाओं का
आगारेहि	—	आगार यानी अपवाद छोड़कर
अभग्गो	—	उल्लंघनरहित
अविराहिओ	—	विराधनारहित
हुज्ज	—	हो
मे काउस्सग्गो	—	मेरा कायोत्सर्ग (निश्चित किये हुये ध्यान से युक्त, कायप्रवृत्ति का त्याग)
जाव	—	जब तक
अरिहंताणं	—	अरिहंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवंताणं	—	भंगवतों को
नमुक्कारेणं	—	नमस्कार करके
न पारेमि	—	(वह कायोत्सर्ग ध्यान) पूरा न करूं
ताव	—	तब तक
ठाणेणं मोणेणं झाणेणं	—	स्थिरता, मौन और ध्यानपूर्वक
अप्पाणं	—	अपनी काया को
वोसिरामि	—	छोड़ता हूँ, (शरीर की क्रियाएँ छोड़ता हूँ।)

भावार्थ

इन क्रियाओं को छोड़कर-जैसे कि श्वास लेना, श्वास छोड़ना, खांसी आना, छींक आना, जम्हाई आना, डकार आना, वायु का निकलना होना, चक्कर आना, पित्त के कारण मूर्छा का आना, शरीर का कुछ कंप जैसा हिलना, शरीर में कफ आदि का सूक्ष्म संचार होना, स्थिर की गई दृष्टि का भी निरुपाय अंशतः हिल जाना, इत्यादि काय की प्रवृत्तियाँ। आदि शब्द से उपद्रव, शरीर-छेदन, अपने समक्ष हो रही पंचेंद्रिय जीव की हत्या, मानवहर्ता चोर अथवा आन्तरिक विद्रोह, या सर्पदंश का भय आदि के कारणों से शरीर को अन्यत्र खिसकाना। इन अपवाद रूप क्रियाओं से अतिरिक्त किसी भी क्रिया का त्याग कर, समूल अथवा आंशिक भंग से विहीन, मेरे द्वारा धारण किया गया, कायोत्सर्ग संपन्न हो।

सारांश, इस ध्यान के पूर्ण होने के पश्चात् जब तक 'नमो अरिहंताणं' पद बोलकर, अरिहंतों को नमन करके कायोत्सर्ग न पारूं, तब तक अपने शरीर को स्थैर्य, मौन और ध्यान में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखकर शारीरिक प्रवृत्तियों का त्यागरूप कायोत्सर्ग करता हूँ।

सूत्र - परिचय

इस सूत्र में कायोत्सर्ग के आगार अर्थात् अपवादों की जो सूची दी गई है उनके अतिरिक्त कायक्रिया के निषेध का यह सूत्र होने से इसे पढ़कर कायोत्सर्ग किया जाता है। अत: यह कायोत्सर्ग सूत्र भी कहलाता है।

हम शरीर को हमारी आत्मा ही मान लेते हैं, इसे 'मैं' समझ लेते हैं। परन्तु वस्तुत: शरीर यह 'मैं' यानी 'आत्मा' नहीं, यह आत्मा का स्वरूप नहीं। शरीर जड़ है, रूप-रसादिमय है। आत्मा चेतन है, ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय है। परन्तु आत्मा को देहाध्यास है, देह के साथ आत्मा का अभेद भ्रम है। उसे देह-ममता लगी हुई है। यह दूर हो तभी आत्मा अध्यात्मभाव में अग्रसर हो सकती है। अत: मुमुक्षु के लिए देहाध्यास दूर करने का एक उपाय है - कायोत्सर्ग करना। इसमें प्रतिज्ञापूर्वक ध्यान में स्थिर रहना होता है और श्वासोच्छ्वास आदि आगार यानी अपवाद छोड़कर काया को सर्वथा निश्चल करना और मौन धारण करना पड़ता है। इसमें शरीर की किसी प्रकार की संभाल नहीं की जाती। मक्खी, मच्छर आदि का उपद्रव होने पर भी कायोत्सर्ग-ध्यान के समय शरीर के अंगो को बिल्कुल हिलाया नहीं जाता। संक्षेप में इस बात की सतत प्रतीति की जाती है कि मानो शरीर है ही नहीं, केवल आत्मा ही है।

कायोत्सर्ग से विषय-कषायों को जीता जा सकता है, उससे समभाव की प्राप्ति होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. लोगस्स (नामस्तव) सूत्र

लोगस्स उज्जोअ-गरे,
धम्मतित्थ-यरे जिणे,
अरिहंते कित्तइस्सं,
चउवीसं पि केवली ॥१॥
उसभ मजिअं च वंदे,
संभव मभिणंदणं च सुमइं च,
पउमप्पहं सुपासं,
जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥
सुविहिं च पुप्फदंतं,
सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च,
विमल मणंतं च जिणं,
धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ३ ॥
कुंथुं अरं च मल्लिं,
वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च,
वंदामि रिट्ठनेमिं,
पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥
एवं मए अभिथुआ,
विहुय-रयमला पहीण-जरमरणा,
चउवीसं पि जिणवरा,
तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
कित्तिय वंदिय महिया,
जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरुग्ग बोहिलाभं
समाहिवर मुत्तमं दिंतु ॥६॥
चंदेसु निम्मल-यरा,
आइच्चेसु अहियं पयास-यरा,
सागरवर-गंभीरा,
सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

शब्दार्थ

लोगस्स	—	पंचास्तिकाय लोक का
उज्जोअगरे	—	प्रकाश करनेवाले
धम्मतित्थयरे	—	धर्मतीर्थ के स्थापक
जिणे	—	राग-द्वेषादि के विजेता
अरिहंते	—	अरिहंतो का
कित्तइस्सं	—	कीर्तन करूंगा
चउवीसंपि	—	चौवीस भी
केवली	—	केवलज्ञानी
उसभ	—	ऋषभदेव को
मजिअं	—	अजितनाथ को
वंदे	—	वंदना करता हूँ
संभव	—	संभवनाथ को
मभिणंदणं च	—	और अभिनन्दन स्वामी को
सुमइं च	—	और सुमतिनाथ को
पउमप्पहं	—	पद्मप्रभ स्वामी को
सुपासं	—	सुपार्श्वनाथ को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिणं च — जिनेश्वर को
चंदप्पहं — चन्द्रप्रभ स्वामी को
सुविहिं च — और सुविधिनाथ को
पुप्फदंतं — अपर नाम 'पुष्पदंत' को
सीअल सिज्जंस — शीतलनाथ तथा श्रेयांसनाथ को
वासुपूज्जं च — वासुपूज्य स्वामी को
विमलमणंतं च जिणं — विमलनाथ तथा अनंतनाथ जिन को
धम्मं संतिं च वंदामि — धर्मनाथ और शांतिनाथ को वंदना करता हूँ।
कुंथुं अरं च मल्लिं — कुंथुनाथ, अरनाथ और मल्लिनाथ को
वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च — मुनिसुव्रतस्वामी और नमिनाथ को वंदना करता हूँ।
वंदामि रिट्ठनेमिं — अरिष्ट नेमिनाथ को वंदना करता हूँ।
पासं तह वद्धमाणं च — उसी प्रकार पार्श्वनाथ तथा वर्धमान स्वामी को
एवं मए — इस प्रकार, मेरे द्वारा
अभिथुआ — स्तुति किए गए
विहुयरयमला — कर्मरजमल से रहित
पहीणजरमरणा — वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त
चउवीसंपि जिणवरा — २४ भी जिनेश्वरदेव
तित्थयरा मे — तीर्थंकर मुझ पर
पसीयंतु — प्रसन्न हों
कित्तिय-वंदिय-महिया — स्तुति, वंदना, पूजा किए गए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे ए लोगस्स	—	लोक में जो ये
उत्तमा सिद्धा	—	उत्तम सिद्ध
आरुग्ग	—	भावआरोग्य (मोक्ष) के लिए
बोहिलाभं	—	बोधिलाभ
समाहिवरं	—	श्रेष्ठ (भाव) समाधि
उत्तमं दिंतु	—	उत्तम दीजिए
चंदेसु निम्मलयरा	—	चन्द्रमा से अधिक निर्मल
आइच्चेसु	—	सूर्यों से
अहियं पयासयरा	—	अधिक प्रकाश देनेवाले
सागरवरगंभीरा	—	श्रेष्ठ सागर से भी गंभीर
सिद्धा	—	हे सिद्ध भगवंतों !
सिद्धिं मम दिसंतु	—	मुझे मोक्ष प्रदान करो

भावार्थ

लोक अर्थात् धर्मास्तिकाय आदि पाँच अस्तिकायरूप विश्व का ज्ञान करनेवाले, 'धर्म-तीर्थ' (धर्मशासन) के संस्थापक, राग-द्वेषादि के विजेता जिन, व अष्ट प्रातिहार्यादि के योग्य अरिहंत, केवलज्ञान के द्वारा पूर्णता 'यानी' परमात्मभाव को प्राप्त करनेवाले चौबीस तीर्थंकरों की भी (अन्य तीर्थंकरों के साथ) मैं उनका नाम लेकर स्तुति करूँगा ॥ १ ॥

श्री ऋषभदेव व श्री अजितनाथ को वंदन करता हूँ, श्री संभवनाथ, श्री अभिनंदनस्वामी, श्री सुमतिनाथ, श्री पद्मप्रभस्वामी, श्री सुपार्श्वनाथ तथा श्री चन्द्रप्रभस्वामी को मैं वंदन करता हूँ ॥ २ ॥

श्री सुविधिनाथ अथवा पुष्पदंत, श्री शीतलनाथ, श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेयांसनाथ, श्री वासुपूज्यस्वामी, श्री विमलनाथ, श्री अनन्तनाथ, श्री धर्मनाथ तथा श्री शांतिनाथ को मैं नमन करता हूँ ॥ ३ ।

श्री कुंथुनाथ, श्री अरनाथ व श्री मल्लिनाथ को मैं वंदन करता हूँ, श्री मुनिसुव्रतस्वामी, श्री नमिनाथ, श्री अरिष्टनेमि, श्री पार्श्वनाथ तथा श्री वर्धमान (अथवा महावीर) स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

इस प्रकार मेरे द्वारा स्तुति किए गए, कर्मरज तथा मोहमल से मुक्त, पुनः जरामरण से विहीन, चौबीस तथा अन्य जिनवर तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हो ॥ ५ ॥

लोक में जो उत्तम सिद्ध हैं तथा इन्द्र तक भव्य जीवों ने जिन का कीर्तन, वंदन और पूजन किया है, वे मुझे आरोग्य, बोधिलाभ (जैनधर्म--स्पर्शना अथवा भावारोग्य मोक्ष के लिए बोधिलाभ) और उत्तम चित्त की समाधि प्रदान करें ॥ ६ ॥

चन्द्रों से भी अधिक निर्मल, सूर्यों से भी अधिक प्रकाश करनेवाले, एवं स्वयंभूरमण समुद्र की अपेक्षा भी अधिक गंभीर सिद्ध भगवंत मुझे सिद्धि दें ॥ ७ ॥

सूत्र--परिचय

इस सूत्र में २४ तीर्थंकर परमात्माओं की नामकीर्तन रूप स्तुति करके वंदना की गई है। अतः इसे 'चउवीसत्थय' सूत्र अथवा 'चतुर्विंशति जिननामस्तवः' सूत्र भी कहते हैं। सूत्र के प्रथम शब्द से इसका नाम 'लोगस्स' सूत्र भी है।

इस सूत्र के द्वारा ओष्ठ और जिह्वा को हिलाये बिना (१) कायोत्सर्ग में मन के भीतर चिंतन कर, तथा (२) कायोत्सर्ग न होने पर प्रगट बोलकर, तीर्थंकर भगवान को नाम लेकर नमस्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया जाता है।

इस सूत्र की प्रथम गाथा में प्रभु के चार मुख्य अतिशय (तीर्थंकर की विशेषताएँ) वर्णित की गई हैं। 'लोगस्स उज्जोअगरे' से ज्ञानातिशय, 'धम्मतित्थयरे' से वचनातिशय, 'जिणे' से अपायरागादि-अपगमातिशय, 'अरिहंते' से पूजातिशय,--इन चार अतिशयों का ध्यान इस प्रकार क्रमशः किया जा सकता है कि प्रभु को मन के समक्ष लाकर उनके (१) हृदय में विश्व प्रकाशी ज्ञानप्रकाश, (२) मुख में धर्मतीर्थस्थापक वाणी, (३) नेत्र में 'जिन' की वीतरागता, तथा (४) मुख के पीछे भामंडल या दोनों ओर ढुलाए जाते चंवर (चामर) प्रातिहार्य देखे जाएँ। इस प्रकार 'चउवीसंपि' में 'पि' अर्थात् 'भी' कहा है, इसका मतलब यह है कि मैं २४ प्रभु का तो कीर्तन करता ही हूँ साथ में और अनंत प्रभुओं का भी करता हूँ। यहाँ 'और' कर के २-५ क्यों लेवें? अनंत प्रभु ही लिये जाएँ। इसलिए यहाँ २४ जिनप्रभु और उनकी चारों और अनंत जिनभगवान् नजर में लाएँ।

बाद की तीन गाथाओं में-क्रमशः ८, ८, ८ प्रभुओं को वंदना की गई है। तत्पश्चात् २४ व अनंत प्रभु की निर्मल और अक्षय अमर के रूप में स्तुति करके उनकी प्रसन्नता अर्थात् प्रभाव की याचना की गई है। तदुपरांत कीर्तित- वंदित- पूजित एवं उत्तम सिद्ध के रूप में स्तुति करके आरोग्य व बोधिलाभ (अथवा भाव-आरोग्य स्वरूप मोक्ष के लिए बोधिलाभ) एवं उत्तम भावसमाधि की प्रार्थना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की गई है।

अंतिम गाथा सिद्ध भगवंतों की अनुपम निर्मलता, प्रकाशकता, व गंभीरता की प्रशंसा करके सिद्धि यानी मोक्ष की अभ्यर्थना की गई है।

यह सूत्र अत्यन्त प्रभावशाली है।

सामायिक

सावद्यकर्ममुक्तस्य दुर्ध्यानरहितस्य च ।
समभावे मुहूर्तं तद् व्रतं सामायिकं मतम् ॥

(मानसिक-वाचिक-कायिक) पापप्रवृत्तियों से अलिप्त तथा दुर्ध्यान से रहित आत्मा का एक मुहूर्तपर्यंत जो समभाव है, उसको प्राप्त कराने वाले व्यापार का नाम है सामायिक व्रत।

[आवश्यक सूत्र टीका]

जो कोई मोक्ष गये, जाते हैं, और जायेंगे, वे सभी सामायिक की महिमा से ही गए, जाते हैं और जायेंगे, ऐसा समझना चाहिए। [संबोध प्रकरण]

सामायिक का फल

दो घड़ी (४८ मिनिट) समपरिणामकारी सामायिक करनेवाला श्रावक ९२ करोड़, ५९ लाख, २५ हजार, ९२५ ३/८ नौ सो पच्चीस तथा ३/८ (९२ ५९ २५ ९२५ ३/८) पल्योपम वर्ष का देवभव का पुण्य बांधता है।

सामायिक का महत्त्व

सामायिक एक व्रत है। इसे लेने की विधि है। सर्वज्ञ भगवान् का कथन है कि जो आत्मा संयम, नियम और तप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सुरीत्या मग्न होती है अर्थात् जो इन तीनों का पालन करती है, उसे समभाव अथवा उपशमभाव की प्राप्ति होती है।

सामायिक का अर्थ है समभाव लानेवाली प्रवृत्ति। समभाव यह है जिसमें सुख में हर्ष-आनंद नहीं, और दुःख में खेद नहीं। चाहे संसार के इष्ट पदार्थ सामने उपस्थित हों चाहे अनिष्ट, इन दोनों के प्रति मन में राग अथवा द्वेष नहीं रखे, अर्थात् आसक्ति अथवा दुर्भाव नहीं रखना चाहिए। मन को उदासीन-तटस्थ, स्थिर, व प्रसन्न रखने का प्रयत्न रखना चाहिए।

व्रत (प्रतिज्ञा) का महत्त्व :-

इस समभाव की प्राप्ति के लिए राग, द्वेष, हर्ष, खेद उत्पन्न करनेवाले पाप-व्यापार यानी सांसारिक प्रवृत्तियों (सावद्य प्रवृत्तियों) का प्रतिज्ञाबद्ध त्याग रखना चाहिए, वे नहीं करनी चाहिए। ये होती रहें तो स्वाभावतः इनके संबंध में रागादि उत्पन्न होंगे। दूसरी बात यह है कि बिना प्रतिज्ञा केवल इन प्रवृत्तियों को न रखने से ही तत्संबन्धी कर्मबंध से बचा नहीं जा सकता। क्योंकि त्याग की प्रतिज्ञा अगर नहीं है तो मन में इन पापों की आशसा (अपेक्षा) विद्यमान है, और पाप की अपेक्षा भी कर्मबंध का कारण है, एवं वह अपेक्षा, अवसर मिलते ही बिना संकोच, पापाचरण ले आती हैं। क्योंकि मन समझता है कि मुझे तो प्रतिज्ञा नहीं है।' वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तभी रुकें जब इनके त्याग की प्रतिज्ञा ही कर ली जाए। उस प्रतिज्ञा से सावद्य प्रवृत्तियाँ रुक जाती हैं। फलतः तदविषयक रागादि नहीं होते हैं, और कुछ अश में समभाव का आविर्भाव होता है। इस समभाव की क्रियारूप सामायिक वारंवार व आजीवन करने योग्य है।

वारंवार किये गए ४८ मिनिट के सामायिक का जीवन-पर्यन्त हर्ष-खेद अथवा राग-द्वेष के प्रसंगो पर प्रभाव पड़ता है। कहा भी है कि सामायिक करते समय श्रावक भी श्रमण के समान (सर्वपापरहित तथा समभावयुक्त) होता है, इस लिए सामायिक बहुवार करना चाहिए।

सामायिक का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि करोड़ों जन्मों तक तीव त्रास को सहकर भी जीव जिन कर्मों का क्षय नहीं कर सकता, पापों का नाश नहीं कर सकता, इन्हें समभाव से युक्त जीव आधे क्षण में नष्ट कर सकता है। दूसरे शब्दो में कहें तो सामायिक एक उत्कृष्ट योग-साधना है।

आत्मा से बद्ध कर्मों का आधे क्षण में क्षय करनेवाले सामायिक का अपने जीवन में नित्य सेवन करें।

सामायिक यह, श्रावक जीवन (मानवजीवन) का सार (CREAM) है। जीवन का आभूषण है। वीतरागता तक पहुंचाने वाली गाडी है। परमात्मभाव प्रगट करने की चाबी है। दुःखों का अंत लाने का उपाय है। भयमुक्त होने का पिज्जर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. श्री 'करेमि भंते' (सामायिक) सूत्र

करेमि भंते! सामाइयं,
सावज्जं जोगं पच्चक्खामि,
जाव नियमं पज्जुवासामि,
दुविहं - तिविहेणं,
मणेणं, वायाए, काएणं,
न करामि, न कारवेमि,
तस्स भंते! पडिक्कमामि,
निंदामि, गरिहामि,
अप्पाणं वोसिरामि।

शब्दार्थ

करेमि	—	मैं करता हूं
भंते	—	हे भगवन्!
सामाइयं	—	सामायिक
सावज्जं जोगं	—	सपाप प्रवृत्ति को
पच्चक्खामि	—	प्रतिज्ञा से छोड़ता हूं
जावनियमं	—	जब तक नियम (अर्थात् दो घटिका की)
पज्जुवासामि	—	उपासना करता हूं
दुविहं	—	दो प्रकार (करना, कराना) को
तिविहेणं	—	तीन प्रकार से
मणेणं, वायाए, काएणं	—	मन, वचन, काया से
न करेमि	—	करूं नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न कारवेमि — कराऊं नहीं
तस्स भंते — हे भगवन्! (अब तक सेवित) उस (पापप्रवृत्ति) का
पडिक्कमामि — प्रतिक्रमण करता हूं
निंदामि — आत्म-साक्षी से निंदा करता हूं
गरिहामि — गुरु के समक्ष निंदा करता हूं
अप्पाणं वोसिरामि — मैं ऐसी पापयुक्त (अपनी पापी आत्मा का ममत्व छोड़ देता हूँ) आत्मा को वोसिराता हूं।

भावार्थ

(गुरुजी से सामायिक का पच्चक्खाण लेते समय कहना चाहिए) हे गुरु भगवन् (हे 'भंते' = भगवंत, भदंत कल्याणकारी)! मैं सामायिक करता हूँ। पापों के व्यापार का त्याग करता हूं।(त्याग का नियम लेता हूं।) इससे

जब तक मैं इस नियम में बद्ध रहूं तब तक मैं मन, वचन, काया तीनों प्रकार से न तो पाप-प्रवृत्ति करूंगा, न कराऊंगा।

इससे पूर्व मैंने जो पाप-प्रवृत्ति की हों उनसे (हे भगवन्!) मैं वापिस लौटता हूँ। (कृत पाप-प्रवृत्तियों का मिथ्या-दुष्कृत करता हूँ।) उन पाप-प्रवृत्तियों की आत्म-साक्षी से निंदा करता हूँ, गुरु की साक्षी से निन्दा करता हूँ, तथा पापभावयुक्त आत्मा को छोड़ता हूँ यानी इसके प्रति ममत्व का त्याग करता हूँ।

सूत्र - परिचय

इस सूत्र में मुख्यतः सामायिक की बात है, अतः इसे सामायिक-सूत्र भी कहते हैं। सूत्र का प्रारम्भ 'करेमि भंते' शब्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से होने के कारण इसका नाम 'करेमि भंते' सूत्र भी है। सामायिक एक व्रत है, अतः जिस क्रिया में समभाव की आय (कमाई) हो ऐसी क्रिया सामायिक कहलाती है। यह कहा जा सकता है कि सामायिक का अर्थ है समता में रहने की शिक्षा देनेवाला व्यापार। सब जीवों के प्रति और समस्त इष्ट-अनिष्ट पदार्थों के प्रति समभाव का पालन करना है उसकी शिक्षा (अभ्यास) चले,-- इस उद्देश्य से (१) सभी पाप--प्रवृत्तियों को प्रतिज्ञापूर्वक बंद करना, (२) इंद्रियों के विकारों पर संयम रखना, (३) शुभ भाव में रमण करना, व (४) आर्त्त-रौद्र नामक अशुभ ध्यान का त्याग करना चाहिए। इस हेतु शास्त्र – स्वाध्याय करना चाहिए।

इन चारों की सिद्धि के लिए सामायिक किया जाता है। संक्षेप में, रागद्वेष को जीतकर समभाव की साधना करनी यह सामायिक है।

इस सूत्र में सपाप-व्यापार (सावद्य योग) का त्याग है। यहां ये दो प्रकार से किया जाता है। मन से न करना न कराना, वचन से न करना न कराना, शरीर से न करना, न कराना।

सामायिक की विधि में पहले जाने आने में हुई जीव-विराधना के विषय में इरियावहियं की क्रिया की जाती है। बाद में बाह्य तथा आभ्यंतर से शुद्ध हो कर सामायिक की प्रतिज्ञा (पच्चक्खाण) व स्वाध्याय-आदेश की याचना की जाती है; बाद में ४८ मिनिट तक सामायिक में स्थिरता की जाती है। ऐसा पच्चक्खाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेने के लिए इस सूत्र का उपयोग होता है। जैसे नवकार मंत्र एक श्रेष्ठ मंत्र है, उसी प्रकार सामायिक एक श्रेष्ठ योग है। इससे सब जीवों को अभयदान देने का महान लाभ होता है, उपरांत असत्यादि पापप्रवृत्तियों का प्रतिज्ञाबद्ध त्याग होता है।

१०. सामाइयवय-जुत्तो सूत्र

सामाइयवय-जुत्तो,
जाव मणे होइ नियम-संजुत्तो,
छिन्नइ असुहं कम्मं
सामाइय जत्तिआ वारा ॥ १ ॥
सामाइअम्मि उ कए,
समणो इव सावओ हवइ जम्हा,
एएण कारणेणं,
बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ २ ॥

सामायिक विधि से लिया, विधि से पारा, विधि करते हुए जो कोई अविधि हुई हो उस सबका मन, वचन काया से मिच्छामि दुक्कडं।

दस मन के, दस वचन के, बारह काया के, इन ३२ दोषों में यदि कोई दोष लगा हो, तो उसका मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं।

शब्दार्थ

सामाइयवयजुत्तो — सामायिक व्रत से युक्त
जाव मणे होइ — जब तक मन हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियम संजुत्तो	—	नियम-युक्त
छिन्नइ असुहं कम्मं	—	(तब तक) अशुभ कर्म कटता रहता है--दूर होता चलता है
सामाइय	—	सामायिक
जत्तिआ वारा	—	जितनी बार
सामाइयम्मि	—	सामायिक
उ कए	—	तो करने से
समणो इव	—	साधु के समान
सावओ	—	श्रावक
हवइ	—	होता है
जम्हा	—	जिस कारण से
एएण कारणेणं	—	इस कारण से
बहुसो	—	अनेकबार
सामाइयं	—	सामायिक
कुज्जा	—	करना चाहिए।

भावार्थ

जब तक और जितनी बार मन में पापप्रवृत्ति के त्याग का नियम वाला होता है, तब तक और उतनी बार सामायिक करने वाले जीव के अशुभ कर्मों का नाश होता रहता है।

सामायिक करनेवाला सामायिक की अवधि में श्रावक होने पर भी साधुतुल्य होता है। अतः सामायिक बारंबार करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैंने यह सामायिक विधिपूर्वक लिया है और उसे विधिपूर्वक पूर्ण किया है। इस विधि को करते हुए प्रमाद के कारण कोई दोष लगा हो तो उसके संबन्ध में मेरा मिच्छामि दुक्कडं है, तद्विषयक मेरा दुष्कृत मिथ्या हो। दुष्कृत की निन्दा-संताप करता हूं।

सामायिक के समय में दस मन के, दस वचन के, और बारह काया के, - इस प्रकार कुल ३२ दोषों में से किसी भी दोष का सेवन भूल से भी हुआ हो तो उस विषय का 'मिच्छामिदुक्कडं' है (मेरा दोष मिथ्या हो।)

सूत्र - परिचय

सूत्र का प्रारंभ 'सामाइयवय-जुत्तो' से होता है। अत: इसका नाम 'सामाइयवय जुत्तो' है। इस सूत्र से सामायिक पारा जाता है। अत: इसका दूसरा नाम 'सामाइक-पारण' सूत्र है। सामायिक पारना अर्थात् सामायिक को विधिपूर्वक पूर्ण करना।

इस सूत्र की पहली गाथा में सामायिक के नियम की महिमा प्रदर्शित की गई है। जब तक मन नियम-युक्त यानी नियम में दत्तचित है, तब तक पापकर्मों का छेद होता रहता है।

सूत्र की दूसरी गाथा में सामायिक के प्रभाव का वर्णन किया गया है। सामायिक वाला श्रावक साधु के समान बनता है। कारण यह है कि साधु के लिए आजीवन सामायिक में जैसे पापयोग का प्रतिज्ञाबद्ध त्याग होता है, वैसा ही श्रावक के लिए दो घड़ी के सामायिक में होता है। इस महिमा और प्रभाव के कारण इस सूत्र में उपदेश दिया जाता है कि सामायिक बहुबार करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्त में सामायिक की अवधि में भूल से प्रमाद के कारण मन से, वचन से, अथवा काया से कोई दोष या पाप लगा हो तो आत्म-साक्षी व गुरु की साक्षी में उसकी निन्दा-गर्हा-पश्चात्ताप किया गया है।

सामायिक लेने की विधि

सामायिक के लिए आवश्यक उपकरण :

१. कटासन २. मुहपत्ति ३. चरवला [गुरुमहाराज की अनुपस्थिति में] इन तीन के अतिरिक्त धर्म की पुस्तक, पुस्तक रखने के लिए चौकी, बाजोठ अथवा ऊंचा आसन, और नवकारवाली।

सामायिक करते समय शुद्ध वस्त्र में केवल धोती, और उसमें देववंदन करना हो तो दुपट्टा भी पहनना चाहिए।

सामायिक करने से पूर्व जिस स्थान पर सामायिक करना हो, उसे चरवले से उपयोगपूर्वक (जिससे किसी जीव जंतु को दुःख न हो) पूंज करके आसन बिछाना चाहिए।

गुरु महाराज की उपस्थिति में, उनसे न तो अति दूर और न ही उनके अति निकट बैठना चाहिए। अर्थात् मध्यम अंतर से बैठना चाहिए।

गुरु महाराज उपस्थित न हो, तो ऊँचे आसन - स्थान पर धार्मिक पुस्तक आदि ज्ञानादि उपकरण रखकर बाँए हाथ में मुहपत्ति पकड़कर उसे मुख के पास रखकर, तथा दायां हाथ ज्ञानादि के साधन (पुस्तक या माला) के सन्मुख ऊंधा (उलटा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वाद मुद्रा से) रख करके एक नवकार तथा पंचिंदिय सूत्र बोलकर गुरु-स्थापना करनी चाहिए।

तत्पश्चात् 'खमासमण' सूत्र बोल कर भूमि का स्पर्श करते हुए गुरुजी को पंचांग से प्रणिपात-वंदना करनी चाहिए। [बोलते समय इस सूत्र के तीन भाग किए जाएँ—

(१) इच्छामि खमासमणो वंदिउं,

(२) जावणिज्जाए निसीहियाए,

(३) मत्थएण वंदामि।

वंदन के अनन्तर अनुक्रम से 'इरियावहियं' 'तस्स उत्तरी' और 'अन्नत्थ' सूत्र कहने चाहिए। तत्पश्चात् एक 'लोगस्स' का 'चंदेसुनिम्मलयरा' पद तक मन में पाठ (स्मरण) करना चाहिए। पाठ कायोत्सर्ग में रहते हुए मौनरूप से यानी इस रीति से किया जाय कि ओष्ठ न फड़कें। लोगस्स का पाठ न आता हो तो चार नवकार का पाठ करना।

काउस्सग्ग पूरा होने पर 'नमो अरिहंताणं' कह कर काउस्सग्ग पारा जाए, बाद में संपूर्ण लोगस्ससूत्र मुँह से प्रकट बोलना चाहिए। तत्पश्चात् खमासमण देकर बाद में 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! मुहपत्ति पडिलेहुं' बोलकर मुहपत्ति पडेलेहने के लिए गुरुमहाराज की आज्ञा मांगना (सद्गुरु आज्ञा देते है-'पडिलेहेह'।) गुरुमहाराज न हों तो समझ लेना कि गुरु-आदेश मिल गया है। तदनन्तर 'इच्छं' कहकर गोदोहासन की अवस्था में बैठकर दो गोडे के बीच रखे दो हाथ से मुहपत्ति की पडिलेहना करना। यह पडिलेहना करते समय कुल मिलाकर ५० बोलका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिंतन करना चाहिए। ५० बोल बोलते समय किन-किन अंगो का स्पर्श मुहपत्तिसे करना - वे पचास बोल ये हैं,–

मुँहपत्ति के ५० बोल

१	सूत्र, अर्थ को, तत्त्व रूप से श्रद्धा करूं –
३	सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय परिहरूं (त्याग करूं) –
३	कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग परिहरूं –
३	सुदेव, सुगुरु, सुधर्म को आदरूं –
३	कुदेव, कुगुरु, कुधर्म परिहरूं –
३	ज्ञान, दर्शन, चारित्र को आदरूं –
३	ज्ञान-विराधना, दर्शन-विराधना चारित्र-विराधना परिहरूं
३	मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति आदरूं –
३	मनदंड, वचन दंड, कायदंड परिहरूं –
	(यहां तक २५ बोल हुए)
३	हास्य, रति, अरति परिहरूं –
३	भय, शोक, जुगुप्सा परिहरूं –
३	कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या परिहरूं –
३	रसगारव, रिद्धिगारव, शातागारव परिहरूं –
३	मायाशल्य, नियाणशल्य, मिथ्यात्वशल्य परिहरू –
२	क्रोध, मान परिहरूं –
२	माया, लोभ परिहरूं –
३	पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय की जयणा करूं –
३	वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय की रक्षा करूं –
	(ये और २५ बोल हुए। कुल २५ + २५ = ५० बोल हुए)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ये २५ + पूर्व के २५ = ५० बोल मुहपत्ति-पडिलेहन में बोलने यानी चिंतन करने होते हैं।)

इस प्रकार चिंतन करके मुहपत्ति की पडिलेहना करने के पश्चात् खड़े होकर 'खमासमण' सूत्र बोलकर के वंदन करना, और आज्ञा मांगना कि 'इच्छाकारेणे संदिसह भगवन्! सामायिक संदिसाहूं?' [गुरु महाराज कहें 'संदिसावेह'] स्वयं कहना 'इच्छं'। पुनः खमासमण देकर आज्ञा मांगना 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! सामायिक ठाउं?' [तब गुरु महाराज कहे-'ठायेह'] स्वयं 'इच्छं' कह कर दोनों हाथ जोड़कर एक नवकार गिनना। गिनने के उपर गुरु से विनती करना 'इच्छकारी भगवन्! पसाय करी सामायिक दंडक उच्चरावो जी'। इस समय गुरु महाराज अथवा कोई बड़े व्यक्ति सामायिक में हों, तो वे 'करेमि भंते' सूत्र पढ़े। उसे विनय से हाथ जोड़कर शांति से सुनना। [यदि गुरु महाराज अथवा कोई ज्येष्ठजन वहां उपस्थित न हों, तो 'करेमि भंते' सूत्र स्वयं बोलना।]

तत्पश्चात् तत्काल खमासमण दे कर गुरु की आज्ञा मांगना 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! बेसणे संदिसाहुं?' [गुरु आज्ञा दें 'संदिसावेह'] स्वयं 'इच्छं' कहकर खमासमण देना, तथा पुनः आज्ञा मांगना 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! बेसणे ठाउं?' (गुरु कहेंगे-ठाएह) 'इच्छं' कहकर खमासमण देकर आज्ञा मांगना 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! सज्झाय संदिसाहूं?' [गुरु कहते हैं- 'संदिसावेह'] स्वयं 'इच्छं' कहना। खमासमण देकर फिर आज्ञा मांगना 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! सज्झाय करूं?' [गुरु कहें 'करेह'] स्वयं 'इच्छं' कहकर दो हाथ जोड़कर तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवकार गिनना, तथा बाद में आसन को पूँज कर उस पर बैठना। तत्पश्चात् ४८ मिनिट तक स्वाध्याय करना अर्थात् सूत्रगाथा गोखना, पारायण करना, धर्मग्रंथ वांचना--पढ़ना, धर्मसूत्र का अध्ययन करना, स्तोत्रपाठ, जाप, शुभभावना या धर्मध्यान करना, सारांश, शुभ भाव में रहना। सामायिक की अवधि में धर्म-तत्त्व, आत्मा और परमात्मा को छोड़कर अन्य कोई विचार नहीं करना चाहिए। नहीं कोई दूसरी बात करनी। ४८ मिनिट बाद विधिपूर्वक सामायिक पारना चाहिए।

सामायिक पारने की विधि

१. खडे होकर खमासमण देकर फिर खड़े होकर 'इरियावहियं' 'तस्स उत्तरी' तथा 'अन्नत्थ' सूत्र बोलना। एक 'लोगस्स' अथवा चार नवकार का काउस्सग्ग करना। (काउस्सग्ग में 'चंदेसुनिम्मलयरा' तक 'लोगस्स' मन में याद करना।) काउस्सग्ग पूरा होने पर 'नमो अरिहंताणं' कहकर काउस्सग्ग पारना। बाद में पूरा लोगस्स प्रगट कहना।

२. फिर खमासमण देकर आज्ञा मांगना 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! मुहपत्ति पडिलेहूं?' गुरु कहे-'पडिलेहेह'। बाद मे 'इच्छं' कहकर ५० बोल के चिंतन के साथ मुहपत्ति पडिलेहना।

३. फिर खमासमण देकर पुनः खड़े होकर आज्ञा मांगना-'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! सामायिक पारूं?'

४. गुरु कहे-'पुणो वि कायव्वं' - (सामायिक पुनः करने योग्य है।) हमको बोलना है - 'यथाशक्ति'।

५. फिर खमासमण देकर प्रगट कहना, 'इच्छाकारेण संदिसह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवन्! सामायिक पार्युं ।' तब गुरु कहें-'आयारो न मोत्तव्वो'-(सामायिक के आचार का त्याग करने योग्य नहीं'। अर्थात् सामायिक की प्रवृत्ति छोडने योग्य नहीं।)

६. स्वयं कहना 'तहत्ति' (आपका कथन सत्य है।) इसके पश्चात् चरवले पर दायां हाथ रखकर एक नवकार गिनकर 'सामाइयवयजुत्तो सूत्र 'सामा० विधिए... १० मनना... दुक्कडं' तव पढ़ना चाहिए।

प्रणाम और चैत्यवंदन का भेद

१. केवल मस्तक झुकाकर प्रणाम करना एकांगी प्रणाम है। २. दो हाथ जोड़ने से दो-अंगी प्रणाम। ३. दो हाथ जोड़कर मस्तक नत करने से त्रयांगी प्रणाम। ४. दो हाथ और दो घुटने झुकाने से (भूमि पर लगाने से) चतुरंगी प्रणाम। ५. दो हाथ, दो घुटने और मस्तक भूमि पर झुक कर लगाने से पंचांगी प्रणाम कहलाता है।

'दंडक' अर्थात् 'अरिहंत चेइयाणं' चैत्यस्तव आदि सूत्रों के आलापक (फकरे) और जो स्तुति (थोय अर्थात् काउस्सग्ग करने के पश्चात् केवल 'अरिहंत चेइयाणं' और 'अन्नत्थ' सूत्र बोलकर काउस्सग्ग करके संस्कृत अथवा किसी अन्य भाषा में स्तुति) कही जाती है, यह लघु चैत्यवंदन कहा जाता है।

यह च र योग (अर्थात् चार थोयों की एक स्तुति का संपूर्ण जोड़) नमुत्थुणं, लोगस्स, पुक्खरवर, सिद्धाणं-बुद्धाणं सूत्रों के साथ हो तो यह मध्यम चैत्यवंदन कहा जाता है।

१. नमुत्थुणं, २. अरिहंत-चेइयाणं, ३. अन्नत्थ लोगस्स, ४. पुक्खरवर और ५. सिद्धाणं-बुद्धाणं, - ये पाँच दंडक सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो बार चार स्तुतियाँ (का जोड़), और जयवीयराय बोलकर किया गया चैत्यवंदन यह उत्कृष्ट देववंदन माना जाता है।

चैत्यवंदन का फल

शुद्ध भाव, शुद्ध वर्णोच्चारण एवं अर्थचिंतन आदि द्वारा की गई वंदना खरे सोने और असली छापवाले रुपये के समान होती है। ऐसी वंदना यथोचित गुणवाली होने के कारण निश्चित रूप से मोक्षदायक है।

शुद्ध भाववाली किन्तु शुद्ध वर्णोच्चारण और अर्थचिंतन से हीन वंदना, खरा सोना नहीं किन्तु खोटी छापवाला रुपया समान है। यह अभ्यास दशा में अतीव हितकारी है। भावविहीन वंदना, वर्णादि से शुद्ध होने पर भी खोटे सोने किन्तु असली छाप के रुपए की भांति, खोटी है। उभयशुद्धि रहित वंदना खोटे सोने और खोटी छापवाले रु. के तुल्य सर्वथा खोटी और अनिष्टकारी है (पंचाशकशास्त्र)

चैत्यवंदन से होनेवाला लाभ

'चैत्यवंदन' अर्थात् स्थापना-जिन यानी जिनेश्वर भगवान् की प्रतिमा को वंदन। जिनेश्वरदेव को तीर्थंकर, वीतराग, अर्हत्, अरिहंत आदि भी कहते हैं। रागद्वेष को जीतनेवाले ये जिन, केवली, वीतराग कहलाते हैं। इनमें जो प्रातिहार्य आदि विशिष्ट अतिशयित ऐश्वर्य के कारण मुख्य होते हैं, वे अरिहंत तीर्थंकर जिनेश्वर कहलाते हैं। भाव-तीर्थ अर्थात् संसाररूपी सागर से तैरने का साधन। तीर्थ को धर्मशासन भी कहते हैं। ऐसे तीर्थ अथवा धर्म - शासन के संस्थापक तीर्थंकर प्रभु होते हैं। उन्हें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी भी जड़ या चेतन पदार्थ के प्रति रागद्वेष नहीं होते है। अत: वे वीतराग कहे जाते हैं। 'अरिहंत' का मुख्यार्थ 'अरिह' है 'जो अष्टप्रातिहार्य, ३४ अतिशय, समवसरण, नौ सुवर्ण कमल, आदि की शोभा व सुरासुरेन्द्र द्वारा की जानेवाली पूजा के योग्य होते हैं।' अर्ह = अरिह होने से 'अरिहंत' तीर्थ (धर्म-शासन) स्थापने से तीर्थंकर हैं। अनंतकाल में ऐसे अनंत अरिहंत तीर्थंकर हुए हैं। इसी अवसर्पिणी काल में इस भरतक्षेत्र में ऐसे २४ तीर्थंकर हुए हैं। इन सब के नाम इसी पुस्तक में अन्यत्र दिए गए हैं।

चैत्यवंदन यह तीर्थंकर परमात्मा को वंदन करने तथा उनकी स्तुति करने का अनुष्ठान है। तीर्थंकर का निष्पाप, शुद्ध जीवन पहले साधनामय होता है, बाद में कैवल्य प्राप्त होने पर जीवन्मुक्त सिद्धिमय होता है। वे सर्वज्ञ बनकर भव्यजीवों को सत्यतत्त्व और शुद्ध मार्ग का उपदेश देते हैं। तीर्थंकर भगवान श्रेष्ठ प्रेरक है, श्रेष्ठ आलंबन है।

चैत्यवंदन के अनुपम लाभ

१. चैत्य यानी जिनमूर्ति की वंदना, स्तुति करने से अपना मन प्रसन्न यानी रागादिसंक्लेश से रहित व निर्मल बनता है।

२. मन को पापत्याग, सम्यक् साधना व सुकृत करने की प्रेरणा मिलती है।

३. तीर्थंकर के गुणों के चिंतन-मनन व आकर्षण-अहोभाव से हमारे में उन गुणों का बीजारोपण होता है जो भविष्य में गुणरूप में फलित होते हैं। 'बीजं सत्प्रशंसादि।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. अरिहंत देव की वंदना, पूजा, गुणगाथा से शुभ भावनाएँ जागरित होती हैं, जीवन पवित्र बनता है।

५. मन प्रभु की स्तुति में जब लीन होता है, तब वह अशुभ भावों से बच जाता है एवं पुराने अशुभकर्म दूर होते हैं।

६. इतनी अवधि में कई पापप्रवृत्ति से जीव बचा रहता है।

७. कहा है, — 'चैत्यवंदनतः सम्यक् शुभो भावः प्रजायते।
तस्मात् कर्मक्षयः सर्वं ततः कल्याणमश्नुते ॥'

अर्थात् शुद्धभाव से किये सविधि चैत्यवंदन से शुभभाव जागते हैं। फलतः कर्मों का क्षय होता है; इससे समस्त कल्याण प्राप्त होता है। तात्पर्य, अंत में अक्षुण्ण मोक्ष-सुख की प्राप्ति होती है। हे जिनेश्वर भगवन्! आप की वंदना व स्तुति से मेरा जीवन निर्मल और निष्पाप बने।

---

११. 'जगचिंतामणि'-चैत्यवंदन सूत्र

(खमा० दे कर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! चैत्यवंदन करूं? इच्छं')

(इतना बोलकर पढना, –)

जग-चिंतामणि! जगनाह!
जग-गुरु! जगरक्खण!
जगबंधव! जगसत्थवाह!
जगभाव-विअक्खण! ॥ १ ॥
अट्ठावय-संठविअरूव!
कम्मट्ठ-विणासण!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउवीसंपि जिणवर!
जयंतु अप्पडिहय-सासण ॥ २ ॥

(वस्तु छंद)

कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं,
पढम-संघयणि,
उक्कोसय सत्तरि-सय जिणवराण
विहरंत लब्भइ
नव कोडिहिं केवलिण,
कोडि-सहस्सनव-साहू गम्मइ,
संपइ जिणवर वीस,
मुणि बिहुं कोडिहिं वर-नाण,
समणह कोडि-सहस्स-दुअ,
थुणिज्जइ निच्चविहाणि ॥ ३ ॥
जयउ सामिय। जयउ सामिय।
रिसह सत्तुंजि,
उज्जिंति पहु-नेमिजिण,
जयउ वीर सच्चउरी-मंडण,
भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय,
मुहरि-पास दुह-दुरिअ-खंडण, ॥४॥
अवर, विदेहि तित्थयरा,
चिहुँ दिसि विदिसि जिं केवि
तीआऽणा-गय-संपइय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंदु जिण सव्वे वि ॥ ५ ॥
सत्ता-णवइ सहस्सा,
लक्खा छप्पन्न अट्ठकोडिओ,
बत्तीससय बासियाइं,
तिअ-लोए चेइए वंदे ॥ ६ ॥
पनरस-कोडि-सयाइं,
कोडी बायाल लक्ख अडवन्ना,
छत्तीस-सहस्स-असीइं,
सासय-बिंबाइ पणमामि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

१. जगचिंतामणि	—	हे जगत के चिंतामणि रत्न !
जगनाह	—	हे जगत् के नाथ !
जगगुरु	—	हे जगत के गुरु !
जगरक्खण	—	हे जगत् के रक्षक !
जगबंधव	—	हे जगत के बन्धु !
जगसत्थवाह	—	हे जगत् के सार्थवाह !
जगभावविअक्खण	—	हे जगत् के भावों के ज्ञाता !
२. अट्ठावयसंठविअरूव	—	हे अष्टापद पर स्थापित बिंबवाले
कम्मट्ठविणासण	—	हे अष्टकर्म के नाशक !
चउवीसंपि जिणवर	—	हे चौवीस भी तीर्थंकर
जयंतु	—	(मेरे दिल में) विजयवंत हो !
अप्पडिहयसासण	—	हे अबाधित शासन वाले
३. पढम संघयणि	—	हे प्रथम संहनन वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसय सत्तरिसय — उत्कृष्ट १७०
जिणवराण — जिनेश्वर
विहरंत लब्भइ — विचरते मिलते हैं
नवकोडिहिं केवलिण — ९ करोड़ केवलज्ञानी के साथ
कोडिसहस्स नव साहु — नौ सहस्त्र करोड़ साधु से
गम्मइ — अनुसराते हैं
संपइ — वर्तमान काल में
जिणवर वीस — बीस जिनेश्वर देव
मुणि बिहुं कोडिहिं वरनाण — दो करोड़ केवलज्ञानी मुनि के साथ
समणह कोडि सहस्स दुअ — दो हजार करोड़ साधु के साथ
थुणिज्जइ निच्चविहाणि — हमेशा प्रातः स्तवना कराते है

४. जयउ सामिय ! जयउ सामिय ! — स्वामिन् ! जय हो - २
रिसह सत्तुंजि — शत्रुंजय पर हे ऋषभदेव !
उज्जिंति पहुनेमि जिण — गिरनार पर हे नेमिनाथ प्रभु !
जयउ वीर — हे महावीर ! जयवंता वर्तो
सच्चउरी मंडण — हे सत्यपुरी (सांचोर) के भूषण !
भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय — हे भरुच में मुनिसुव्रत स्वामी
मुहरिपास — हे (टींटोडा) में मुहरी पार्श्वनाथ ! हे (मुहरिपास - मथुरा में पार्श्वनाथ)
दुह-दुरिअ-खंडण — दुःखपापनाशक
अवर विदेहि तित्थयरा — हे अन्य देहरहित (स्थापना) तीर्थंकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिहुँदिसि विदिसि	—	चारों दिशा विदिशा में
जिकेवि	—	जो कोई
तीआणागय संपइअ	—	अतीत-अनागत (भूत, भविष्य), वर्तमान काल में
वंदु जिण सव्वेवि	—	सभी तीर्थंकरों को वंदन करता हूँ
सत्ताणवइ सहस्सा	—	९७ हजार
लक्खा छप्पन्न	—	५६ लाख
अट्ठकोडिओ	—	८ करोड़
बत्तीससय बासियाइं	—	३२८२
तिअलोए	—	तीनों लोक में
चेइए वंदे	—	जिन मंदिरों को वंदना करता हूँ
पनरस कोडि-सयाईं	—	१५०० करोड़ (१५ अरब)
कोडी बायाल	—	४२ करोड़
लक्ख अडवन्ना	—	५८ लाख
छत्तीस सहस्स	—	३६ हजार
असीइं	—	८०
सासय बिंबाइं	—	शाश्वत जिन प्रतिमाओं को
पणमामि	—	प्रणाम करता हूँ

भावार्थ

हे जगत् को इच्छित देने वाले चिंतामणि रत्न ! हे जगत् के नाथ ! हे जगत् के गुरु ! हे जगरक्षक ! हे विश्वबंधु ! हे विश्व के सार्थपति ! हे जगत् के समस्त पदार्थों का स्वरूप जानने में विचक्षण ! हे अष्टापद पर्वत पर स्थापित प्रतिमावाले ! हे अष्टकर्मों के नाशक ! हे ऋषभादि चौबीस भी (अर्थात् अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्त के साथ) तीर्थंकर भगवंत ! हे अप्रतिहत शासन वाले ! (मेरे हृदय में) जयवन्त रहो ॥ १ ॥

१५ कर्मभूमियों में उत्कृष्टकाल में वज्रऋषभनाराच संहननवाले विचरते हुए जिनेश्वर भगवानों की अधिक से अधिक संख्या १७० होती है। (तब) सामान्य केवलियों कि संख्या अधिकाधिक ९ करोड़, व साधुओं की संख्या ९० अरब होती है। वर्तमानकाल में २० तीर्थंकर विचर रहे है। केवलज्ञानी मुनि दो करोड़, श्रमण २० अरब हैं। इन सब की प्रातः काल स्तुति की जाती है। ॥ २ ॥

हे स्वामिन्! आप विजयी हो विजयी हो। शत्रुंजय पर विराजमान हे ऋषभदेव ! गिरनार पर विराजमान हे नेमिजिन ! सांचोर के श्रृंगारस्वरूप हे वीरजिन ! भरुच में प्रतिष्ठित हे मुनिसुव्रतस्वामिन्! मथुरा में विराजमान दुःखपापनाशक हे पार्श्वनाथ भगवान्! आप की जय हो।

इनके अतिरिक्त = अन्य, 'विदेही' = देहमुक्त जो कोई स्थापना-जिन रूप तीर्थंकर परमात्मा, भूत भविष्य किंवा वर्तमानकाल में चारों दिशाओं विदिशाओं में हो उन सबको में वंदन करता हूँ॥ ३ ॥

तीन लोक में स्थित आठ करोड़, सत्तावन लाख दो सौ बयासी (८,५७,००,२८२) शाश्वत जिनमंदिरो को प्रणाम करता हूँ॥ ४ ॥

त्रिलोक की १५ अरब, ४२ करोड़, ५८ लाख, ३६ हजार और ८० शाश्वत प्रतिमाओं को नमन करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र - परिचय

यह सूत्र 'जगचिंतामणि' शब्द से आरंभ हुआ है, अतः इसका नाम 'जगचिंतामणि' है। प्रातः प्रतिक्रमण में इस सूत्र का पहले पाठ होता है तथा इससे चैत्यवंदन होता है। इस कारण इसे प्रभात-चैत्यवंदन भी कहते हैं।

जिनमंदिर, और जिनमूर्ति (प्रतिमा) को चैत्य कहते हैं। इस सूत्र द्वारा ऐसे चैत्यों को भावपूर्वक वंदना की गई है। प्रातः उठ कर परमोपकारी भगवान् का नाम-स्मरण करने से व उनके गुणों की स्तुति करने से, एवं मन में उनका दर्शन करने से, हृदय शुभ और शुद्ध होता है। अन्तःकरण में एक दिव्य आनंद हिलोरा लेता है। प्रातः काल ही मन शुभ, शुद्ध और आनंदित होने के कारण, सारा दिन उसका प्रभाव रहता है। दिवस शुभ भाव और शुभ प्रवृत्तियों में व्यतीत होता है। कहा जाता है कि इस सूत्र के प्रथम पद से 'अप्पडिहय सासण' तक के पद की पहली व दूसरी गाथा गणधर श्री गौतम स्वामीजी द्वारा अष्टापद जाने पर २४ तीर्थंकरों की स्तुति के निमित्त रची गई थी। तीसरी 'कम्मभूमिहिं...' गाथा में विचरण करनेवाले उत्कृष्ट तथा वर्तमान १७०-२० 'तीर्थंकरों' नौ करोड़ तथा दो करोड़ केवलज्ञानियों, ९० अरब और २० अरब श्रमणों की स्तुति है। चौथी 'जयउ सामिअ...' गाथा में शत्रुंजय आदि पांच तीर्थों के मूलनायकों की जय बुलाई है। इसी में अवर (=अन्य) 'विदेही' अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान काल के चारों दिशाओं विदिशाओं में स्थापित जिनों (जिनबिंबों) को नमस्कार किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके पश्चात् ४ थी ५ वी गाथा में विश्व के शाश्वत जिनमंदिरों तथा शाश्वत जिनबिंबों की संख्या बताकर उन्हें वंदना की गई है। इतना अवश्य है कि इसमें व्यंतर और ज्योतिष देवलोक में स्थित शाश्वत मंदिरों और प्रतिमाओं की संख्या का समावेश नहीं है, क्योंकि वे असंख्य हैं। *

१२. जंकिंचिनाम-तित्थं-सूत्र

जंकिंचि नाम तित्थं,
सग्गे पायालि माणुसे लोए,
जाइं जिणबिंबाइं,
ताइं सव्वाइं वंदामि ॥१॥

शब्दार्थ

जंकिंचि	—	जो कोई
नाम	—	(यह वाक्यालंकार रूप शब्द है)
तित्थं	—	तीर्थ है
सग्गे	—	स्वर्ग में
पायालि	—	पाताल में
माणुसे लोए	—	मनुष्य लोक में
जाइं	—	जितने
जिण बिंबाइं	—	जिन प्रतिमाएँ हैं,
ताइं सव्वाइं वंदामि	—	उन सबको वंदना करता हूँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ

स्वर्ग, पाताल तथा मनुष्य लोक में जो भी तीर्थ-स्थान (जिनमंदिर) हो और वहाँ जितने भी जिनबिंब (प्रतिमाएँ) हों, उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ।

सूत्र - परिचय

'जंकिंचि' शब्द से सूत्र का प्रारंभ होने के कारण इसका नाम 'जंकिंचि' सूत्र है। इसमें दोनो के आलंबन से वीतराग बनने हेतु तीर्थों को संक्षेपत: वंदना की गई है। फलत: इसे 'लघु तीर्थवंदन सूत्र' भी कहते है।

'जो संसार से तारे वह तीर्थ', इस तीर्थ के दो भेद है, - जंगम व स्थावर। जंगम अर्थात् गतिशील-हिलते डुलते। स्थावर अर्थात् अचल, स्थिर। जिनशासन और शासनधारक मुनि जंगम तीर्थ हैं। तीर्थंकरो के प्रसिद्ध मंदिर-स्थान, पवित्र क्षेत्र, पवित्र भूमियाँ, कल्याणक भूमियाँ आदि स्थावर तीर्थ है। उदाहरणत: पावापुरी, सम्मेतशिखर, शत्रुंजय, गिरनार-आदि।

पवित्र तीर्थ-भूमियों जिनमंदिरों और जिनबिंबो को वंदना करने से हृदय में परमात्मा के प्रति भक्ति-बहुमान का पवित्र भाव जागरित होता है। विशेष चिन्तन करने से तीर्थंकरों के पावन चरणकमलों द्वारा पवित्रीकृत भूमियों से पवित्र जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। इसी कारण तीर्थयात्रा का महत्त्व है। इस सूत्र के माध्यम से स्वर्ग, पाताल एवं पृथ्वी लोक पर स्थित सभी तीर्थों और उन में विराजमान जिनबिंबो को वंदना की गई है।

* * *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. नमुत्थुणं (शक्रस्तव) सूत्र

नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं ॥ १ ॥
आइगराणं, तित्थयराणं, सयंसंबुद्धाणं ॥ २ ॥
पुरिसुत्तमाणं पुरिस-सीहाणं,
पुरिस-वरपुंडरियाणं,
पुरिस-वरगंधहत्थीणं ॥ ३ ॥
लोगुत्तमाणं, लोग-नाहाणं,
लोग-हियाणं, लोग-पईवाणं
लोग-पज्जोअ-गराणं ॥ ४ ॥
अभयदयाणं, चक्खुदयाणं,
मग्गदयाणं, सरणदयाणं,
बोहिदयाणं ॥ ५ ॥
धम्मदयाणं, धम्मदेसयाणं,
धम्मनायगाणं, धम्म-सारहीणं
धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टीणं ॥ ६ ॥
अप्पडिहय-वरनाण- दंसणधराणं,
वियट्ट-छउमाणं ॥ ७ ॥
जिणाणं-जावयाणं,
तिन्नाणं-तारयाणं,
बुद्धाणं-बोहयाणं,
मुत्ताणं-मोअगाणं ॥ ८ ॥
सव्वन्नू-णं सव्वदरिसी-णं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिव-मयल-मरुअ मणंत-मक्खय-
मव्वाबाह-मपुणरावित्ति
सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं,
नमो जिणाणं जिअभयाणं ॥ ९ ॥
जे अ अईया सिद्धा,
जे अ भविस्संति णागए काले,
संपइ अ वट्टमाणा,
सव्वे तिविहेण वंदामि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

नमुत्थु	—	नमस्कार हो
णं	—	[यह पद वाक्यशोभार्थ है]
अरिहंताणं	—	अरिहंतों को
भगवंताणं	—	भगवंतो को
आइगराणं	—	(धर्म के) आदिकर्ताओं को
तित्थयराणं	—	तीर्थंकरों को
सयं-संबुद्धाणं	—	स्वयं सम्यग् बोध पानेवालों को
पुरिसुत्तमाणं	—	जीवों में उत्तमों को
पुरिससीहाणं	—	जीवों में सिंह-तुल्यों को
पुरिस-वरपुंडरियाणं	—	जीवों में श्रेष्ठ कमल समान को
पुरिस-वरगंधहत्थीणं	—	जीवों में श्रेष्ठ गंधहत्थी जैसों को
लोगुत्तमाणं	—	सकल भव्यलोक में उत्तम को
लोगनाहाणं	—	चरमावर्त-प्राप्त जीवों के नाथ को
लोगहियाणं	—	पंचास्तिकाय लोक के हितकारी को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोगपईवाणं — संज्ञी लोक के लिये दीप समान को
लोगपज्जोअ-गराणं — १४ पूर्वधर गणधर लोगों को उत्कृष्ट प्रकाश देनेवालों को
अभयदयाणं — चित्तस्वस्थता देनेवालों को
चक्खुदयाणं — धर्मदृष्टि — धर्म-आकर्षण के दाताओं को
मग्गदयाणं — सरल चित्त देनेवालों को
सरणदयाणं — तत्व जिज्ञासा देनेवालों को
बोहिदयाणं — तत्व बोध देनेवालों को
धम्मदयाणं — चारित्र धर्म देनेवालों को
धम्मदेसयाणं — धर्मोपदेश देनेवालों को
धम्मनायगाणं — धर्म के नायक को
धम्मसारहीणं — धर्म के सारथि को
धम्म-वर चाउरंत
चक्कवट्टीणं — चतुर्गति भंजक श्रेष्ठ धर्मचक्रवालों को
अप्पडिहयवरनाण
दंसणधराणं — अस्खलित श्रेष्ठ(केवल)ज्ञान-दर्शन के धारकों को
वियट्टछउमाणं — छद्म अर्थात् आवरण के यानी घातीकर्मों के नाश करनेवालों को
जिणाणं जावयाणं — जीतनेवालों तथा जितानेवालों को
तिन्नाणं-तारयाणं — तैरने वालों और तैरानेवालों को
बुद्धाणं बोहयाणं — पूर्णबोध प्राप्त करनेवालों तथा पूर्णबोध प्राप्त करानेवालों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुत्ताणं मोअगाणं — स्वयं मुक्त तथा अन्यों को मुक्त करानेवालों को

सव्वन्नूणं — सर्वज्ञों को

सव्वदरिसीणं — सर्वदर्शीयों को

सिव-मयल-मरुअ — निरुपद्रव, स्थिर, व रोगरहित,

मणंत-मक्खय-मव्वाबाह — अनंत, अक्षय, बाधारहित

मपुणरावित्ति — जहां से पुनरागमन न हो, ऐसा

सिद्धिगइ-नामधेयं-ठाणं संपत्ताणं — सिद्धिगति नामक स्थान प्राप्त करनेवालों को

नमो जिणाणं जियभयाणं — भय को जीत लेनेवाले जिनेन्द्र भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ।

जेंअ अइया सिद्धा — जो जिन अतीत काल में सिद्ध हुए

जेंअ भविस्संतिणागएकाले — जो भविष्यकाल में होंगे

संपइ अ वट्टमाणा — और जो वर्तमान काल में विद्यमान हैं

सव्वे तिविहेण वंदामि — सबको तीन प्रकार (मन-वचन-काया) से वंदना करता हूँ।

भावार्थ

अरिहंत भगवंतो को नमस्कार हो ॥ १ ॥

धर्म की आदि करनेवालों को, प्रवचन व श्रमणसंघ रूपी तीर्थ की स्थापना करनेवालों को, तथा संसारत्याग का प्रतिबोध स्वतः प्राप्त करनेवालों को ॥ २ ॥

भव्य जीवों में परोपकारादि गुणों द्वारा उत्तम, कर्म आदि के सम्मुख शूरवीरतादि गुणों द्वारा सिंह समान, कर्मकीचड़-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोगजल से पृथक् उत्तम पुंडरिक-कमल समान, स्वचक्र-परचक्र-महामारि आदि सात प्रकार के उपद्रव दूर करने में गंधहस्ति समान को ॥ ३ ॥

भव्य प्राणीरूप लोक में विशिष्ट तथाभव्यत्व आदि द्वारा उत्तम, रागादि उपद्रव से रक्षणीय विशिष्ट भव्य लोक में मोक्षमार्ग के योगक्षेम करने द्वारा नाथ, धर्मास्तिकाय आदि पंचास्तिकाय स्वरूप लोक को सम्यक् प्ररूपणा द्वारा हितकारी, निकटस्थ भव्य लोकों के हृदय में विद्यमान अज्ञान तथा मिथ्यात्व रूपी गाढ अंधकार को दूर करने में लोकप्रदीप, चौद पूर्वधर लोक को उत्कृष्ट श्रुतप्रद्योत देने के कारण लोकप्रद्योत करने वालों को ॥ ४ ॥

'अभय' यानी चितस्थैर्य को देनेवालों को, 'चक्षु' यानी धर्मरुचि-धर्मआकर्षण रूपी नेत्र का दान करनेवालों को, 'मार्ग' यानी अनुकूल क्षयोपशम स्वरूप सरलतात्मक मार्ग देनेवाले, 'शरण' यानी तत्वजिज्ञासा रूपी शरण देनेवालों को, 'बोधि' यानी मोक्षवृक्ष के मूलरूप बोधि का, (अर्थात् श्रुतधर्म का) लाभ देनेवालों को ॥ ५ ॥

'धम्मदयाणं' – चारित्र धर्म के दाताको, 'धम्मदेसयाणं' – घर के जलते मध्य जैसे संसार में रहनेवाले जीवों को ३५ गुणों से युक्त वाणी द्वारा आग को शान्त करनेवाली मेघतुल्य धर्म-देशना देनेवालों को, 'धम्मनायगाणं' स्वयं उत्कृष्ट धर्म के साधक व उत्कृष्ट धर्मफल प्राप्त करनेवाले होने से धर्म के सच्चे नायक को, अश्व के समान जीवों को धर्ममार्ग में पालन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनेवाले प्रवर्तन करानेवाले व उन्मार्ग से रोकने में दमन करनेवाले होने के कारण धर्मसारथि को, 'धम्मवर चाउरंत...' चतुर्गति-विनाशक श्रेष्ठ धर्मचक्र के धारकों को ॥ ६ ॥

'अप्पडिहय' सर्वत्र अस्खलित केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारणकर्ता को, 'वियट्ट छउमाण' सर्व प्रकार के घाती कर्मों से मुक्त को ॥ ७ ॥

'जिणाणं जावयाणं' राग और द्वेष पर विजय पाने से स्वयं जिन बननेवालों को, उपदेश द्वारा दूसरों को भी जिन बनानेवालों को, 'तिण्णाणं' सम्यग्दर्शनादि जहाज द्वारा अज्ञान-समुद्र को पार कर जानेवालों को, दूसरों को भी पार करानेवालों को, 'बुद्धाणं' केवलज्ञान प्राप्त करके बुद्ध बने हुए को, दूसरों को भी बुद्ध बनानेवालों को, 'मुत्ताणं' सर्व प्रकार के कर्म-बंधनों से मुक्त होनेवालों को, दूसरों को भी मुक्त करानेवालों को ॥ ८ ॥

सर्वज्ञ और सर्वदर्शी को, तथा शिव, स्थिर, व्याधि और वेदना से रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध अपुनरावृत्ति (जहां से पुनः संसार में लौटना नहीं होता), सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त कर चुकों को उन जितभय जिनेश्वर भगवंतों को नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

जो अतीतकाल में सिद्ध हो चुके हैं, जो भविष्यकाल में सिद्ध होते रहनेवाले हैं, और जो वर्तमान काल में अरिहंतरूप में विद्यमान हैं, उन सब को मन, वचन और कायासे वंदन करता हूँ ॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र - परिचय

इस सूत्र में अरिहंत भगवान् की उत्कृष्ट स्तुति है। स्तुतिका एक एक पद अरिहंत प्रभु की विशिष्टता सूचित करता है।

प्रथम शब्द के आधार पर यह सूत्र 'नमुत्थुणं' सूत्र कहलाता है। प्रत्येक तीर्थंकर के (माता के) गर्भ में आने के समय प्रथम सौधर्म देवलोक का शक्रेन्द्र इस सूत्र के द्वारा भगवान् की स्तुति करता है। अतः इसे 'शक्रस्तव' भी कहते हैं।

इस सूत्र में 'नमो जिणाणं जिअभयाणं' पद तक भावजिनकी स्तुति की गई है। 'जे अ अइआ सिद्धा' गाथा में द्रव्यजिनों को नमस्कार है। भावजिन अर्थात् भावतीर्थंकर। भाष्य वचन है– 'भावजिणा समवसरणत्था' समवसरण में तीर्थ की स्थापना कर रहे हों, या देशना दे रहे हों, तब वे भावजिन हैं। इसका मतलब यह है कि उनके अतिरिक्त पृथ्वीतल पर जब विचरणकर रहें हों तब वे द्रव्यजिन कहलाते है। (उस अवस्था में भी वे भावअरिहंत जिन तो अवश्य हैं, किन्तु भावतीर्थंकर जिन नहीं, क्योंकि भावनिक्षेप यथानाम अर्थ की अपेक्षा रखता है।)

इस सूत्र में अंतिम गाथा 'जे अ...' को छोड़कर नौ संपदाएँ हैं। (संपदा=एक भाव को दर्शनिवाला यानी बतानेवाला पद-समूह)। सूत्र के प्रारंभ में 'नमो'-नमस्कार के साथ 'त्थु', अर्थात् 'हो', पद रखकर इससे उच्च (सामर्थ्ययोग के) नमस्कार की प्रार्थना की गई है। भगवान् का दर्शन करते समय दोनों हाथ जोड़कर इस पद को, बाद के प्रत्येक पद के साथ, पढ़कर सिर झुकाते हुए स्तुति की जा सकती है। जैसे कि नमुत्थुणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अरिहंताणं...., नमुत्थुणं भगवंताणं...., नमुत्थुणं आइगराणं.... । अथवा अरिहंताणं नमुत्थु, भगवंताणं नमुत्थु, आइगराणं नमुत्थु... इत्यादि ।

'ललित विस्तारा' में अरिहंत व जैनधर्म की विशेषताएँ

इस सूत्र में अरिहंत भगवान् को प्रत्येक पद द्वारा विशेषण प्रदान कर केवल स्तुति ही नहीं की, परन्तु पदों में निहित गंभीर भावों में

परमात्मा का यथार्थ स्वरूप कैसा होता है,

इतर दर्शनों के क्या क्या मत हैं, और

उनमें तथ्यांश कितना है,

जैनदर्शन की प्रमुख विशेषताएँ कौन कौन सी हैं,

आत्मोत्थान के उपाय कौन-कौन से हैं....,

इत्यादि विषयों का समावेश है ।

(देखें हिंदी ललितविस्तरा-विवेचन व गुजराती 'परमतेज')

ज्यां देवदंदुभी घोष गजवे घोषणा त्रणलोकमां
त्रिभुवन तणा स्वामी तणी सौए सुणो शुभदेशना
प्रतिबोध करता देव मानव ने वली तिर्यंचने
एवा प्रभु अरिहंतने पंचाँग भावे हुं नमुं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जावंति चेइआइं,
उड्ढे अ, अहे अ, तिरिअ-लोए अ,
सव्वाइं ताइं वंदे,
इह संतो तत्थ संताइं॥ १ ॥

शब्दार्थ

जावंति	– जितने
चेइआइं	– चैत्य (जिनबिंब-जिनमंदिर)
उड्ढे अ	– और ऊर्ध्व लोक में
अहे अ	– और अधोलोक में
तिरिअ-लोए अ	– और तिर्यग्लोक में
सव्वाइं	– सब को
ताइं वंदे	– उन्हें वंदन करता हूँ
इह	– यहाँ
संतो	– स्थित (मैं)
तत्थ	– वहाँ
संताइं	– विराजमान (चैत्यों को)

भावार्थ

ऊर्ध्व लोक, अधोलोक तथा मध्य लोक में जितने भी जिन मंदिर और जिनबिंब हैं, वहाँ विद्यमान उन सबको यहाँ स्थित मैं वंदन करता हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र - परिचय

वीतराग जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा साक्षात् जिनेश्वर जैसी हैं। वह वंदनीय है, इसी प्रकार उसका मंदिर भी वंदनीय है। वंदनादि द्वारा इन दोनों के आलंबन से मन को वीतराग बनने की दिशा में अग्रसर होने के लिए असीम बल प्राप्त होता है। इस छोटे से सूत्र द्वारा विश्व के जिनमंदिरों तथा प्रतिमास्वरूप जिनेश्वर भगवंतों को वंदन किया गया है।

यह वंदन किस प्रकार करना? तो समजों कि–

हम अलोक में खड़े होकर सामने १४ राजलोक देख रहे हैं। उनमें नीचे से ऊपर तक मंदिर और चैत्य दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यह मानसिक दर्शन की कल्पना है। यह करते हुए वंदन नमन करना चाहिए....

१५. 'जावंत केवि साहू' सूत्र

जावंत केवि साहू,
भरहेरवय-महाविदेहे अ,
सव्वेसिं तेसिं पणओ,
तिविहेण तिदंड-विरयाणं ॥१॥

शब्दार्थ

जावंत केवि	– जितने भी कोई
साहू	– साधु
भरहेरवय	– भरत व ऐरवत क्षेत्र में
महाविदेहे अ	– और महाविदेह क्षेत्र में (हैं)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वेसिं तेसिं — उन सब को
पणओ — प्रणाम करता हूँ
तिविहेण — तीन प्रकार से (करना, कराना और अनुमोदना)
तिदंड — तीन दंड (मन से पाप करना यह मन-दंड, वचन से करना वचन-दंड, काय से करना काय-दंड) से
विरयाणं — प्रतिज्ञापूर्वक विराम पा चुके हुएँ को

भावार्थ

भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्रों में विद्यमान जो कोई साधु मन, वचन और काय से प्रतिज्ञा पूर्वक पापमय प्रवृत्ति करते नहीं, कराते नहीं तथा उस का अनुमोदन भी नहीं करते, उन्हें मेरा प्रणाम।

सूत्र - परिचय

इस सूत्र के द्वारा सब साधुओं को वंदना की गई है। अतः इसे 'सव्वसाहू-वंदण' सूत्र रूप में भी माना जाता है।

पंच परमेष्ठी में साधु का स्थान पाँचवां है। पाँचों परमेष्ठी आराध्य, पूज्य और श्रद्धेय हैं। साधु भगवंत की सेवाभक्ति से धर्माराधना में सतत जागृति रहती है। उनके चारित्र्य युक्त उपदेश से हमें धर्मनिष्ठ जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा प्राप्त होती है। ऐसे उपकारी मुनिराजों को इस सूत्र में नमस्कार किया गया है। ध्यान में लेने योग्य है कि इसमें साधु का मुख्य गुण यह बताया कि वे पापप्रवृत्ति से त्रिविध त्रिविध विरत है यानी प्रतिज्ञाबद्ध निवृत्त हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. संक्षिप्त पंचपरमेष्ठि नमस्कार

नमोऽर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यः ।

भावार्थ

श्री अरिहंतों को, श्री सिद्धों को, श्री आचार्यों को, श्री उपाध्यायों को तथा सब साधुओं को मैं नमस्कार करता हूँ।

सूत्र - परिचय

यह नवकार-मंत्र का संक्षिप्त सूत्र है। पंचप्रतिक्रमण के सूत्रों में प्रायः संभवतः यही सूत्र सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में रचा गया है। इस सूत्र की रचना श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी ने की थी। संस्कृत को शिष्ट भाषा मानकर आगमों को संस्कृत में परिवर्तन करने की इच्छा से सबसे पहले उन्होंने इस सूत्र की रचना की। परन्तु इसके निमित्त उन को कठोर प्रायश्चित्त करना पड़ा था।

१७. उवसग्गहरं स्तवन (स्तोत्र)

उवसग्गहरं पासं,
पासं वंदामि कम्म-घण-मुक्कं,
विसहर-विस-निन्नासं,
मंगल-कल्लाण-आवासं ॥ १ ॥
विसहर-फुलिंग-मंतं,
कंठे धारेइ जो सया मणुओ,
तस्स-ग्गह-रोग-मारी
दुट्ठजरा जंति उवसामं ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिट्ठउ दूरे मंतो,
तुज्झ पणामो वि बहु-फलो होइ,
नर-तिरिएसु वि जीवा,
पावंति न दुक्ख-दोगच्चं ॥ ३ ॥
तुह सम्मत्ते लद्धे,
चिंतामणि-कप्पपायवब्भहिए,
पावंति अविग्घेणं,
जीवा अयरामरं ठाणं ॥ ४ ॥
इअ संथुओ महायस!
भत्तिब्भर-निब्भरेण हियएण,
ता देव! दिज्ज बोहिं,
भवे भवे पास जिणचंद! ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

उवसग्गहरं — उपद्रवों को हटाने वाले
पासं — जिनका यक्ष 'पार्श्व' नाम का है, अथवा जो आशा के पाश से मुक्त है
पासं — २३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ को
वंदामि — वंदना करता हूँ
कम्मघण-मुक्कं — कर्मबादल से मुक्त
विसहर विस निन्नासं — सर्प-विष (मिथ्यात्वादि दोषों) के नाशक
मंगल कल्लाण आवासं — मंगल व कल्याण का आवास, अगार (निवास)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसहर फुलिंग मंतं	—	'विषहर-फुलिंग' मंत्र को
कंठे धारेइ	—	कंठ में धारण (=रटण) करता है
जो सया मणुओ	—	सदैव जो मनुष्य
तस्स	—	उसका
गह रोग मारी दुट्ठजरा	—	ग्रहपीड़ा, रोग, मारी (प्लेग, मारण-प्रयोग) विषम ज्वर
जंति उवसामं	—	शांत हो जाते हैं
चिट्ठउ दूरे मंतो	—	मंत्र तो दूर रहो
तुज्झ पणामो वि	—	आपको किया हुआ प्रणाम भी
बहुफलो होइ	—	अति फलदायक होता है
नर तिरिएसु	—	मनुष्य व तिर्यंच गति में
वि	—	भी
जीवा पावंति न	—	जीव प्राप्त नहीं करते हैं
दुक्ख-दोगच्चं	—	दुःख और दौर्गत्य (दुर्दशा)
तुह	—	तुम्हारा
सम्मत्ते लद्धे	—	सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर
चिंतामणि-कप्पपायवब्भहिए	—	चिंतामणि और कल्पपादप (कल्पवृक्ष) से अधिक
पावंति	—	प्राप्त करते हैं
अविग्घेणं	—	निर्विघ्न रूप से
जीवा	—	जीव (प्राणीगण)
अयरामरं ठाणं	—	अजर-अमर स्थान
इअ	—	इस प्रकार
संथुओ	—	स्तुति-विषयभूत बने हुए
महायस	—	हे महायशस्विन् !(यशवाले)
भत्तिब्भर-निब्भरेण	—	भक्ति के भार से भरे हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हियएण — हृदय से ('संथुओ' = स्तुति किये)
ता देव दिज्ज — अतः हे देवाधिदेव ! दीजिए
बोहिं — बोधि (सम्यक्त्व जैनधर्म-प्राप्ति)
भवे भवे — प्रत्येक भव में
पास जिणचंद — हे पार्श्व-जिनचंद्र !

भावार्थ

जो उपद्रवों के हर्ता पार्श्वयक्ष वाले हैं, अथवा जो स्वतः उपद्रवहर हैं और आशाओं (तृष्णाओं) से मुक्त हैं, चारों घाती कर्मों से रहित हैं, जो नामस्मरण द्वारा सर्पों का विष दूर करते हैं, (जो मिथ्यात्व आदि दोषों को दूर करते है), तथा जो मंगल (विघ्ननाशक तत्त्वों) और कल्याण (सुखावह भावों) के धामरूप हैं, ऐसे पार्श्वनाथ भगवान् को मैं नमन करता हूँ ॥ १ ॥

(पार्श्वनाथ-घटित) 'विसहर-फुलिंग' नामक मंत्र का जो मानव हमेशा एकाग्रचित से जप करते हैं उनके नौ ग्रह (एवं भूतावेश) की पीड़ा, अनेकविध (कायिक-मानसिक) रोग, महामारी (प्लेग आदि) और विषम ज्वर दूर हो जाते हैं— मिट जाते हैं ॥२॥

उस मंत्र की बात को तो एक ओर छोड़ दें, फिर भी हे पार्श्वनाथ भगवन् !, आपको किया गया भावभरा नमस्कार भी बहुत फल देता है। उससे मनुष्य व तिर्यंच-गति के जीव किसी प्रकार के दुःख और दुर्दशा का शिकार नहीं होते ॥ ३ ॥

चिंतामणिरत्न और कल्पवृक्ष से भी अधिक प्रभावशाली आप का सम्यक्त्व प्राप्त करने से जीव, बिना विघ्न, अजरामर स्थान (मुक्तिपद) को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार हे पार्श्वजिनचन्द्र ! हे महायशस्विन् ! मैंने आपकी भक्तिपूर्ण हृदय से स्तुति की है। अतः हे देवाधिदेव ! इसके प्रभाव से मुझे भवोभव बोधि (= सम्यक्त्व से लेकर वीतरागता पर्यन्त के जैनधर्म की प्राप्ति) प्रदान करो ! ॥ ५ ॥

सूत्र - परिचय

(i) उपसर्गों का एवं दुःख-संकटों का हरण करने के कारण, तथा (ii) सूत्र के प्रथम शब्द के कारण, इस सूत्र को 'उवसग्गहरं' सूत्र कहते हैं।

इस सूत्र में २३ वे तीर्थंकरदेव श्री पार्श्वनाथ भगवान् को वंदना करके उनकी स्तुति की गई है। यहाँ अंत में यह उत्कट प्रार्थना है कि 'मुज से की गई उनकी अथाग भक्ति के प्रभाव से भव-भव में सम्यक्त्व प्राप्त हो।' इससे सूचित होता है कि पहली गाथा से ही दिल में भक्ति ऊछलनी चाहिए।

यह मंत्र-स्तोत्र (मंत्रगर्भित स्तोत्र) है। नवस्मरण में इसका स्थान द्वितीय है। स्तोत्र के पदों में मंत्र गुप्त हैं। श्रद्धापूर्वक इस स्तोत्र का नित्य और सतत स्मरण करने से भौतिक तथा आध्यात्मिक दुःख और आपत्ति-पीडाएँ दूर हो जाती हैं। आत्मा में सम्यग्दर्शन आदि का बल बढ़ता है। इस सूत्र के रचयिता श्रुतकेवली आचार्य भगवान् श्री भद्रबाहुस्वामी हैं।

इस सूत्र की प्रथम गाथा का विषय,-विशिष्टगुणयुक्त प्रभु हैं। दूसरी का विषय,-उनका 'विसहर-फुलिंग' मंत्र हैं। तीसरी में उनको किये गए नमस्कार का फल यह विषय है। चौथी का विषय उनके सम्यक्त्व का प्रभाव है। पाँचवी का विषय,-भक्तिपूर्वक स्तुति के फल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में बोधि की याचना है। इस प्रकार प्रभु का स्वरूप मंत्र-नमस्कार-सम्यक्त्व और भक्तिप्रभाव से संपन्न है।

१८. जयवीयराय सूत्र

जय वीयराय जगगुरु!
होउ ममं तुहप्पभावओ भयवं!
भव-निव्वेओ, मग्गाणुसारिआ,
इट्ठफलसिद्धि ॥ १ ॥
लोगविरुद्ध-च्चाओ,
गुरुजण-पूआ, परत्थकरणं च,
सुहगुरु-जोगो, तव्वयण-सेवणा,
आभव-मखंडा ॥२ ॥
वारिज्जइ जइ वि नियाण-बंधणं
वीयराय! तुह समये,
तह वि मम हुज्ज सेवा
भवे भवे तुम्ह चलणाणं ॥ ३ ॥
दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ,
समाहिमरणं च, बोहिलाभो अ,
संपज्जउ मह एअं,
तुह नाह! पणाम-करणेणं ॥ ४ ॥
सर्वमंगल-मांगल्यं,
सर्वकल्याण-कारणं,
प्रधानं सर्वधर्माणां,
जैनं जयति शासनम् ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दार्थ

जय — जय हो (आपकी मेरे हृदय में)
वीयराय — हे वीतराग
जगगुरु — जगद्गुरु !
होउ — हो
ममं —मुझे
तुह — आपके
प्पभावओ — प्रभाव से
भयवं ! — हे भगवन् !
भवनिव्वेओ — भव-वैराग्य
मग्गाणुसारिआ — मोक्ष-मार्ग की अनुसारिता, तत्त्वानुसारिता
इट्ठफल सिद्धि — अपने ईप्सित कार्य की सिद्धि
लोगविरुद्धच्चाओ — लोकनिंद्य प्रवृत्ति का त्याग, (लोगों को संक्लेश हो वैसी प्रवृत्ति का त्याग)
गुरुजणपूआ — गुरुजन,-धर्मगुरु, विद्यागुरु, व मां-बाप आदि बड़ों की सेवा
परत्थकरणं च — तथा परार्थ परोपकार (=पर-सेवा) करण
सुहगुरुजोगो — चारित्रसंपन्न गुरु का योग
तव्वयण-सेवणा — गुरु-वचन की उपासना (उनके आदेशानुसार व्यवहार-वर्तन)
आभवं — संसारभ्रमण पर्यन्त अथवा इस जन्मान्त तक
अखंडा — अखंड रूप से हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वारिज्जइ — निषेध किया है
जइवि — यद्यपि
नियाण — निदान (सांसारिक वस्तु की प्राप्ति की निश्चित धारणा) को
बंधणं — निश्चित करना इसका
तुह — आपके
समये — शास्त्र में
तहवि — तो भी
मम — मुझे
हुज्ज — प्राप्त हो
सेवा — उपासना
भवे भवे — मोक्ष तक के भावी प्रत्येक भव में
तुम्ह — आपके
चलणाणं — चरणों की
दुक्खक्खओ — भावदुःख (कषाय, विषयलम्पटता, दीनता) का नाश
कम्मक्खओ — कर्मों का नाश
समाहिमरणं — समाधि-पूर्वक मरण
बोहिलाभो— बोधि (सम्यक्त्व से लेकर वीतरागता पर्यन्त के जैनधर्म की प्राप्ति) का लाभ
अ — तथा
संपज्जंउ — प्राप्त हो
मह — मुझे
एअं — यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुह नाह	— हे नाथ ! आपको
पणाम-करणेणं	— प्रणाम करने से
सर्वमंगल	— समस्त मंगलों का
माङ्गल्यं	— मंगलभाव (रूप/शासन)
सर्वकल्याणकारणं	— समस्त कल्याणों का कर्ता
प्रधानं	— श्रेष्ठ
सर्वधर्माणां	— सभी धर्मों में
जैन	— जिनेश्वरदेव का
जयति	— जयवान् रहता है
शासनम्	— शासन

भावार्थ

हे वीतराग जगद्गुरु ! आप मेरे हृदय में जयवन्त रहें, आपकी जय हो । हे भगवन् ! आपके प्रभाव से मुझे (१) 'भवनिर्वेद' अर्थात् संसार के प्रति वैराग्य बना रहे, अर्थात् संसारिक विषयों के प्रति विरक्ति बनी रहे । (२) 'मार्गानुसारिता' अर्थात् मोक्षमार्ग के अनुकूल वृत्ति तथा व्यवहार जारी रहे; अथवा तत्त्वानुसारिता-निस्सार बात की उपेक्षा व तात्त्विक बात की अपेक्षा हो असद् अभिनिवेश का त्याग हो । 'इट्ठफलसिद्धि' = देवदर्शनादि मोक्षमार्ग की साधना चित्त की स्वस्थतापूर्वक होती रहे इस हेतु आवश्यक इच्छित कार्य (आजीविकादि) की सिद्धि हो । ॥ १ ॥

हे प्रभो ! मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि जिससे मैं 'लोकविरुद्ध' यानी लोकनिंद्य कार्य का त्याग करूं, एवं जिससे लोक को संक्लेश हो एसे कार्य करने का त्याग करूं । गुरुजनों के प्रति आदर और सेवाभाव रखूं । परसेवा-परोपकार-परहित करता रहूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे प्रभो ! मुझे चारित्र-संपन्न सद्गुरु की संगति मिले। उनके वचन की उपासना (कथन आदि) का लाभ प्राप्त हो। यह सब कुछ मुझे इस जन्म के अंत तक अथवा संसार-परिभ्रमण पर्यन्त प्राप्त होता रहे ॥ २ ॥

हे वीतराग ! यद्यपि आपके आगमशास्त्र में नियाणा (अर्थात् धर्म के पौद्गलिक फल की निर्धारित कामना) करने का निषेध है, तो भी मेरी यह अभिलाषा है कि मुझे प्रत्येक भव में आपके चरणों की सेवा करने का मिले ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आपको प्रणाम करने से मेरे भावदुःख (कषाय-विषयलालसा-मनोविकार-दीनता-क्षुद्रतादि) का नाश हो। कर्म का क्षय (कर्मनिर्जरा के मार्ग के प्रति आदरभाव) हो। मरण के समय समाधि (मन की राग-द्वेष व हर्ष-खेद से रहित स्थिति) रहे, तथा (परभव में) बोधिलाभ अर्थात् जैनधर्म की प्राप्ति हो ॥ ४ ॥

सभी मंगलों में मंगलभाव लाने वाला, समस्त कल्याणों का कारणरूप, तथा सब धर्मों में प्रधान ऐसा जैनशासन विजयी रहे ॥ ५ ॥

सूत्र - परिचय

जिस प्रकार चक्रवर्ती की सेवा कर के पारितोषिक माँगा जाता है इस प्रकार यहाँ धर्मचक्रवर्ती जिनेश्वर प्रभु की पूजा कर के आध्यात्मिक माँग की गई है। वास्तव में अपनी तीव्र आशंसा व्यक्त की है। इस सूत्र में प्रारम्भ में 'जय वीतराग-जगद्गुरु' भगवान का जयनाद करके भक्त भगवान से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रार्थना करता है कि वे मेरे हृदय में जयवंता जयशील रहें। पहली दो गाथाओं में ६ लौकिक सौंदर्य व २ लोकोत्तर सौंदर्य की माँग है। तीसरी गाथा में जन्मोजन्म के लिए जिनचरण-सेवा की माँग है। चौथी गाथा में इस वर्तमान क्षण से लेकर आगामी भव तक के लिए भगवान् की अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से निष्पन्न होनेवाली वस्तुओं में उसे क्या क्या चाहिए, किस किस की उत्कट अभिलाषा है, उसकी एक सूची इस सूत्र में प्रभु के सन्मुख प्रस्तुत करने की निर्दिष्ट है।

इस सूत्र में वर्णित प्रार्थना अथवा अभिलाषा को अपेक्षा से सर्वोत्तम कही जा सकती है। यह सूत्र स्पष्टत: चित्रित करता है कि भगवान् से ऐसी शक्ति की ही याचना की जाए जिससे स्व-पर कल्याण हो। जिनभक्ति आदि द्रव्यपूजा व स्तवन स्तोत्रादि भावपूजा करके किसी भौतिक सुख की माँग न करते हुए 'भव वैराग्य' से लेकर भव-भव में प्रभुसेवा ही मिलने तक की प्रार्थना की गई है। भगवान् को प्रणाम करने के फल में (१) इस जीवन के हरेक वर्तमान क्षण में आत्मा के भाव- दु:ख (कषाय, विषयासक्ति, मनोविकार, दीनता आदि) का नाश, तथा (२) जीवनपर्यन्त कर्मक्षय-कर्मनिर्जरा के कारणरूप १२ प्रकार का तप, (३) जीवन के अन्त समय पर समाधिमरण, तदुपरांत (४) आत्मा में अगले भव में बोधि-लाभ=जैनधर्म की स्वात्मा में स्पर्शना (=परिणमन) इष्ट है।

इस प्रार्थना से जीवन सरल, निर्मल, ऊर्ध्वगामी बनता है। श्रद्धा अधिक बलवती होती है। यह विश्वास दृढ़ होता है कि 'अरिहन्त प्रभु हमारी समस्त शुभ धारणाओं को सफल करने में अचिंत्य बल और प्रभाव से युक्त है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंत में इस निष्ठा के साथ आह्लाद व्यक्त किया गया है कि इन सब बातों को सिद्धि प्रदान करनेवाले श्रेष्ठ मंगलरूप एवं सर्वकल्याणकारी जैनशासन जयशील है।

'जयवीयराय' यह प्रार्थनासूत्र नहीं किन्तु प्रणिधानसूत्र या आशंसा सूत्र है। प्रार्थना में वीतराग से कुछ मांगा जाता है किन्तु इससे यह फलित होता है कि माँगे तो वीतराग प्रसन्न हो और माँग पूरी करे। ऐसी प्रसन्नता में वीतरागता खण्डित होती है। प्रार्थना में अर्थात् प्राप्त होता है कि सन्मुख व्यक्ति को जबतक प्रार्थना न की जाए तबतक वह प्रसन्न नहीं; वह दया नहीं करते है, किन्तु प्रार्थना करने पर इष्टपूर्ति की दया करते हैं। इससे तो वह रागी सिद्ध होगा! वीतराग भगवान ऐसे रागद्वेष से रहित होते है अतः इस सूत्र में प्रार्थना नहीं किन्तु प्रणिधान है। सूत्र पढ़ते समय अपनी शुभ उत्कट कामना पर मन केन्द्रित हो कि यह आशंसा-इच्छा भी अरिहंत के प्रभाव से पूर्ण होगी।

प्रणिधान अर्थात् भवनिर्वेद आदि विषयों पर मन का केन्द्रीकरण, उनकी तीव्र अभिलाषा, 'मुझे यह चाहिये' ऐसी मन की आशंसा; एवं ऐसी श्रद्धा कि यह वीतराग के प्रभाव से अवश्य मिलता है। इस प्रकार भगवान् के प्रभाव की स्तुति की जाती है। इस स्तुति के अर्थ में इसे प्रार्थना कह सकते है। इस सूत्र का पाठ करते समय मन में यह भाव होना चाहिये कि मुझे 'भव निर्वेद चाहिये। मार्गानुसारिता चाहिये, इष्टफलसिद्धि चाहिये....'इत्यादि। यह दृढ़ विश्वास हो कि इसकी प्राप्ति भगवत्-प्रभाव से ही होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'आभवमखंडा' यानी सतत रूप से भवान्त तक की वस्तु की तीव्र इच्छा प्रकट करके, 'वारिज्जइ'० गाथा में जन्म जन्मान्तर के लिए भगवत्चरण-सेवा की दृढ़ मांग व्यक्त की गई है कि प्रत्येक जन्म में यह मिले। इस हेतु से बाद की 'दुक्खक्खओ' गाथा में चार इच्छाएँ प्रगट की हैं : वीतराग के प्रणाम से १. मानसिक दुःख का क्षय, २. कर्मक्षय अथवा सकाम निर्जरा, ३. समाधिमरण, व ४. बोधिलाभ।

(१) पहली इच्छा में प्रत्येक वर्तमान समय के लिए मानसिक दुःख-क्षय की कामना कर, (२) दूसरी में आजीवन सकाम निर्जरा (१२ प्रकार के तप की निराशंस साधना) की अभिलाषा व्यक्त कर, (३) तीसरी में जीवन के अंतिम समय में समाधिमरण, और (४) चौथी में परलोक के लिए बोधिलाभ की अभिलाषा व्यक्त की गई है।

'सर्वमंगलमाङ्गल्यं' में जिनशासन के प्रभाव की अनुमोदना के साथ हर्ष प्रगट किया गया है कि जिनशासन जयवन्त रहता है ! !

१९. अरिहंत चेइयाणं (चैत्यस्तव) सूत्र

अरिहंत - चेइयाणं
करेमि काउस्सग्गं ॥ १ ॥
वंदणवत्तिआए,
पूअणवत्तिआए,
सक्कारवत्तिआए,
सम्माणवत्तिआए,
बोहिलाभवत्तिआए,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरुवसग्गवत्तिआए ॥ २ ॥
सद्धाए, मेहाए, धिइए,
धारणाए, अणुप्पेहाए, वडढ्माणीए,
ठामि काउस्सग्गं ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अरिहंत चेइयाणं	—	अरिहंत प्रतिमाओं का (वंदणवत्तियाए..... सम्माण०)
करेमि	—	करुंगा
काउस्सग्गं	—	कायोत्सर्ग
वंदणवत्तिआए	—	नमस्कार के निमित्त
पूअणवत्तिआए	—	पुष्पादि-पूजा के निमित्त
सक्कारवत्तिआए	—	वस्त्रालंकार-सत्कार के निमित्त
सम्माणवत्तिआए	—	गुणगान से सम्मान के निमित्त
बोहिलाभवत्तिआए	—	बोधिलाभ के निमित्त(करेमि काउ०)
निरुवसग्गवत्तिआए	—	उपद्रवरहित मोक्ष के निमित्त (करेमि काउ०)
सद्धाए	—	श्रद्धा से
मेहाए	—	कुशल-निपुण बुद्धि से
धिइए	—	स्वस्थता - स्थिरता-दढता से
धारणाए	—	धारणा से
अणुप्पेहाए	—	सूत्रार्थ-चिंतन से
वडढ्माणीए	—	बढ़ती हुई (सद्धाए..... अणुप्पेहाए)
ठामि काउस्सग्गं	—	कायोत्सर्ग करतां हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ

अरिहंत-चैत्यों अर्थात् जिन-प्रतिमाओं के वंदन, पूजन, सत्कार, व सम्मान के लाभ, बोधिलाभ (सम्यक्त्वादि जैनधर्म की प्राप्ति) तथा मोक्ष के निमित्त मैं काउस्सग्ग करना चाहता हूँ। बढ़ती हुई श्रद्धा, प्रज्ञा, स्थिरता, स्मृति एवं सूत्रार्थ-चिन्तन द्वारा मैं काउस्सग्ग में स्थिर होता हूँ।

इसमें वंदन, पूजन, सत्कार, सम्मान, बोधिलाभ तथा मोक्ष ये छः कायोत्सर्ग के निमित्त (प्रयोजन या उद्देश्य) है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए कायोत्सर्ग है। इसमें वंदन, पूजन, सत्कार, सम्मान किन का ? तो कि अर्हत् चैत्यों अथवा प्रतिमाओं का।

'अरिहंत चेइआणं' पद 'वंदणवत्तिआए' से 'सम्माणवत्तिआए' तक के केवल चार पदों के साथ जोड़ा जाता है। अतः इन चार पदों को बोलकर स्वाभाविक रूप से रुकना चाहिए। तत्पश्चात् 'बोहिलाभ० निरुवसग्ग०,-' ये दो पद साथ बोले। इन छः पदों के साथ पूर्व का 'करेमि काउस्सग्गं' अन्वित होगा।

यहाँ बोधिलाभ का अर्थ केवल सम्यक्त्व नहीं किंतु 'जैन धर्म' की प्राप्ति है, अर्थात् सम्यक्त्व से लेकर वीतरागता तक के धर्म हैं। अन्यथा क्षायिक-सम्यक्त्वी अर्थात् शाश्वत सम्यक्त्वयुक्त जीव इस पद को क्यों बोले ? परन्तु इसे सम्यक्त्व से आगे बढ़कर देशविरति से वीतरागता तक के धर्म भी इष्ट हैं, इनके निमित्त यह कायो० इष्ट है; इस वास्ते इस पद का उच्चारण किया जाता है। अतः इन सबधर्मों का समावेश बोधिलाभ में होता है।

अन्त के पाँच पद 'सद्धाए' आदि हेतु-पद हैं, ये कायोत्सर्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के हेतु अर्थात् साधन का सूचन करते हैं। कायोत्सर्ग के लिए ये श्रद्धादि पाँच साधन आवश्यक हैं।

सूत्र - परिचय

हम जीवन में मोहवश, लोभवश, अनेक व्यक्तियों के प्रति राग, सत्कार सम्मान, बहुमान करते हैं। फलतः इन राग के बंधनों से बंधे हुए हम संसार में जन्म-जीवन-मरण के शिकार बनते रहते हैं। अतः रागादि के बंधनो से छूटने पर ही जन्म-जीवन-मरण रुक सकते हैं। इस छूटकारे के लिए वीतराग भगवान् पर अवश्य राग करना चाहिए। वही सरागियों के प्रति राग से हमें मुक्त करने में समर्थ है। किन्तु वीतराग पर राग स्थिर करने के लिए वीतराग के प्रति आदर, पूजा-सत्कार, बहुमान आवश्यक है। यह देखा गया है कि संसार के आदर-सत्कार से राग दृढ़ होता है, व बढ़ता है। तो फिर वीतराग पर राग केन्द्रित करने व बढ़ाने के लिए उनका आदर-सत्कारादि क्यों न किया जाए? इसी हेतु जिन यानी वीतराग की पूजा, भक्ति आदि अनिवार्य है।

इस समय वीतराग भगवान् यहाँ भरतक्षेत्र में विचरते नहीं। अतः उनकी मूर्ति का दर्शन, वंदन, पूजा, भक्ति, आदर, बहुमान आदि करना वीतराग का ही दर्शन आदि है। देखा गया है कि सरस्वती के चित्र के दर्शन और नमस्कार से सरस्वती के प्रति बहुमान-भावना बढ़ती है, उससे बुद्धि विकसित होती है। महान् देशरक्षकों की तस्वीर देखकर सेना को प्रेरणा प्राप्त होती है तथा वंदना करने से जोश या बल मिलता है। तब इस बात में कोई आश्चर्य नहीं कि जिनप्रतिमा के दर्शन से साक्षात् जिन की प्राप्ति का भाव विकसित हो। यह ठीक है कि आदर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्कार, बहुमान देखाव में जिनेन्द्र भगवान् की मूर्ति के प्रति है किन्तु वस्तुतः हमारे मन में यह आदरादि सचमुच जिनेन्द्र भगवान् के प्रति होने का अनुभव में आता है। यह बात भी स्पष्ट है कि स्त्री आदि के असत् राग, आदरादि कम करने के लिए जिन-वीतराग के प्रति बहुमान आदि साधन है। किन्तु जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा के अभाव में जिन-वीतराग प्रभु का राग, आदर, सत्कार, बहुमान, पूजन आदि कैसे क्रियान्वित किया जायगा? सारांश यह है कि जीवन जिनपूजा-सत्कारादि से भरपूर होना चाहिए। कम से कम दिन में एक बार तो जिन-पूजा करनी ही चाहिए।

प्र०—श्रावक ने मंदिर में पूजा कर ली।अतः पूजा का लाभ मिल गया। अब पुनः कौन से लाभ के लिए कायोत्सर्ग करना?

उ०—दूसरे भक्त लोग इन अरिहंत चैत्यों का जो वंदन, पूजन, सत्कार, सम्मान करते हैं, उन वंदनादि के भी अनुमोदना से लाभ लेने के लिए यह कायोत्सर्ग करना है। तब यह प्रतीत होता है कि जीवन में अरिहंतों के वंदनआदि कितने अधिक महत्त्वपूर्ण और आराध्य है। अतएव उनकी अत्यधिक और बिना संतोषी बने हुए आराधना करते रहना चाहिए। श्रावक इस जिनपूजा-सत्कार का हमेशा लोभी बना रहे, कभी भी संतोषी नहीं बने।

अरिहंत प्रभु का भक्त प्रभु की मूर्ति का केवल स्वयं भजन करके ही संतुष्ट नहीं होता, प्रत्युत वह इस बात के लिए भी उत्कंठित रहता है कि 'इतर जनों से क्रियमाण जिनमूर्ति के वंदन, पूजन, सत्कार, सम्मान का भी अनुमोदन करके लाभ ले लूं।' इसी हेतु वह कायोत्सर्ग करता है। विशेषतः यह भी है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि बोधिलाभ अर्थात् सम्यक्त्व से लेकर वीतरागता तक के जैनधर्म की प्राप्ति के निमित्त तथा सर्वथा उपद्रव-रहित मोक्ष के निमित्त भी यहाँ कायोत्सर्ग किया जाता है। कायोत्सर्ग तो छोटा है, किन्तु इसमें अपनी वंदनादि की उत्कट इच्छा प्रगट होती है।

कायोत्सर्ग के ध्यान में साधनभूत श्रद्धा, मेधा आदि आवश्यक हैं। उसमें भी बढ़ती हुई श्रद्धा, मेधा आदि साधनों द्वारा कायोत्सर्ग का ध्यान करना है। वह इस प्रकार, --

कायोत्सर्ग में जिस नवकार या लोगस्स का ध्यान किया जाता है, (१) पहले चरण में उसके लिए यह श्रद्धा होनी चाहिए कि "उसका कायोत्सर्ग-ध्यान करने से हमें दूसरों के द्वारा की जानेवाली वंदनादि से फलित कर्मक्षय का लाभ अवश्य मिलता है।" अपि च, (२) यह कायोत्सर्ग-ध्यान मेधा से करना चाहिए अर्थात् शास्त्रद्वारा विकसित हुई प्रज्ञा से। इससे ध्यान के विषय-विशेष का चिंतन बुद्धिपूर्वक होगा। इसी प्रकार (३) धृति अर्थात् स्थिरता से ध्यान करना चाहिए। (४) ध्यान धारणापूर्वक भी करना चाहिए। इससे यह ख्याल रहता है कि कितना कितना ध्यान हो गया। अंत में (५) ध्यान अनुप्रेक्षा अर्थात् अर्थ-चिंतन के साथ भी करना चाहिए। इससे आत्मा विशुद्ध होती है, एवं उससे परमात्म-स्वरूप के अभेद-ध्यान में स्थिर होती है। अभेदानुभव के विकास से आत्मा परमात्मा बनती है, जीव शिव, जैन जिन बन जाता है। परमात्म-भक्ति में वृद्धि और समाधि की शिक्षा के लिए इस सूत्र का चिंतन-मनन आवश्यक है।

* * *

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चैत्यवंदन की विधि

१. सर्वप्रथम मन्दिरजी में तीन खमासमण देना। तत्पश्चात् दायां घुटना भूमि पर व बायां घुटना थोड़ा-सा खड़ा रखकर व उत्तरासंग पहिनकर दो हाथ योगमुद्रा से जोड़ रखना व बोलना 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! चैत्यवंदन करूँ?' 'इच्छं'।

२. 'सकलकुशलवल्ली०' बोलकर चैत्यवंदन बोलना। फिर

३. 'जंकिंचि०' कहकर 'नमुत्थुणं०' कहना। तत्पश्चात्

४. मस्तक के आगे दो हाथ मुक्तासुक्तिमुद्रा से जोड़कर 'जावंतिचेइआइं०' कहकर एक खमासमण देना बाद में उसी मुद्रा से

५. 'जावंत केवि साहू०', कहकर योगमुद्रा से 'नमोऽर्हत्०' - बोलना । बाद में

६. स्तवन गाना, या 'उवसग्गहरं' का पाठ पढ़ना, फिर

७. मस्तक के आगे दोनों हाथ मुक्तासुक्तिमुद्रा से जोड़कर 'आभवमखण्डा' तक 'जयवीयराय' सूत्र पढ़कर दोनों हाथ नीचे करके जयवीयराय का शेष भाग पढ़ना। तत्पश्चात्

८. खड़े होकर 'अरिहंत चेइआणं०' बोलकर अन्नत्थ के पाठ के पश्चात् एक नवकार का काउस्सग्ग करना। उसके अनन्तर

९. काउस्सग्ग पारकर 'नमोऽर्हत्०' कहना व थुई, (स्तुति) पढ़ना।[तदुपरांत सकल संघ के लिए तीन खमासमण देना। इससे हम दूसरों को कह भी सकेंगे कि तुम्हारे लिए भगवान् का दर्शन, वंदन किया था। इसमें हमारी अनुमोदना भी रहती है।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनपूजा

गंध (वास-चूर्ण आदि), धूप, दीपक, अक्षत व फल-नैवेद्य, -इन पाँच द्रव्यों से, हिंसादि पाँच पापों को चूर्ण करनेवाली प्रभात की 'पंचप्रकारी' पूजा होती है। बाद मध्याह्न में जल, गंध (चंदन-केशर), पुष्प, धूप, दीपक, अक्षत, नैवेद्य, फल,-- इन आठ द्रव्यों से की गई, अष्टकर्म का दलन करनेवाली, अष्टप्रकारी पूजा होती है। स्नात्र, अर्चन, वस्त्र तथा आभूषण आदि से, फल-नैवेद्य-दीपक आदि से तथा नाटक, गीत, आरती आदि द्वारा सर्वप्रकारेण 'सर्वप्रकारी' पूजा होती है। (चैत्यवंदन भाष्य)

जिन-पूजा यह मुख्यतया, द्रव्य-पूजा और भाव-पूजा,—इस रीति से, दो प्रकार की होती है। उनमें पुष्पादि पुद्गल--द्रव्यों से की जानेवाली पूजा द्रव्यपूजा है, और जिनेश्वरदेव की आज्ञा का पालन करना यह भावपूजा है। (संबोध प्रकरण)

जिन-दर्शन-पूजा का फल

श्री जिनमंदिर-दर्शन जाने की इच्छा होने पर एक उपवास का फल मिलता है, वहाँ जाने की तय्यारी करने से दो उपवास का, जाने के लिए पैर उठाने पर तीन उपवास का फल मिलता है। श्री जिनमंदिर की ओर प्रस्थान करने से चार उपवास का, थोड़ा चल लेने पर पाँच का, मार्ग में पन्द्रह का और मंदिरजी के दर्शन होने पर एक मास के उपवास का फल मिलता है।

मंदिरजी में प्रभु के निकट पहुँचने पर छमासी तप का तथा मंदिरजी के गँभारे के द्वार पर नमस्कार करने से एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष के उपवास का फल मिलता है।

मंदिरजी की प्रदक्षिणा देते समय एक सौ वर्ष के उपवास का, व श्री जिनभगवान् की पूजा करने से एक हजार वर्ष के उपवास का, तथा उनकी स्तुति से अनन्त पुण्य उपलब्ध होता है। (पद्मचरित्र) 'गगन तणुं जिम नहीं मानम्, 'तिम अनंत गुण जिनगुण गानम्... अर्हत जिनंदा प्रभु मेरे...

(आत्मारामजी कृत सत्तर भेदी पूजा)

मूर्ति कैसे भगवान्?

जिसमें मनुष्य निवास करता है उसे मकान कहते हैं। जहाँ भगवान की प्रतिमा विराजमान की जाती है, उस मुकाम को मंदिर कहते हैं। चैत्य, देरासर, मंदिर ये सब पर्यायवाची शब्द (other words) हैं। जहाँ जिनेश्वर भगवान की मूर्ति यानी जिनप्रतिमा स्थापित की जाती है, उसे जिनमंदिर या जैन देरासर कहते हैं। शिल्पी ने तैयार की जिनप्रतिमा पर, प्रभु के च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इन पाँच कल्याणक प्रसंगों के मंत्राक्षरादि से संस्करण उत्संव आदि द्वारा, अंजनशलाका-विधि की जाती है। तब यह प्रतिमा जिनेश्वररूप बन जाती है। ऐसी संस्कारित मूर्ति ही पूजनीय, वंदनीय है।

जिनमंदिर यह जिनेश्वर-वीतराग तीर्थंकर परमात्मा की पूजा और उपासना का, व सेवा और भक्ति का पवित्र धाम है। पवित्र मंत्रोच्चारपूर्वक अंजनशलाका-विधि द्वारा जिस जिनमूर्ति में प्राणप्रतिष्ठा की गई हो, उसे पवित्र और आनंददायक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वातावरण में पूज्य श्रमण भगवंतों की निश्रा में जिनमंदिर में विधि पूर्वक आसन पर प्रतिष्ठित की जाती है। इससे जिनमंदिरों के कोने कोने में, उनके समस्त वातावरण में ऐसा दिव्य प्रभाव पड़ता है कि उससे हृदय के भाव शुद्ध होते हैं और अन्तर में शुभ भावना जागरित होती है।

ऐसे जिनमंदिर में विराजमान जिनप्रतिमा को केवल प्रतिमा अथवा मूर्ति नहीं समझना चाहिए। उसे साक्षात् जिनेश्वर भगवान् समझकर आंतरिक उल्लास से उसका चरणस्पर्श करना चाहिए। हमें उसकी पूजा-भक्ति उत्तम द्रव्यों से करनी है, उसके गुणों की भावभीनी स्तुति करनी है। इस प्रकार वीतराग भगवान् की भावपूर्ण हृदय से भक्ति-उपासना करते करते हमारे विषयभोग के पाप, रागद्वेषादि दोष, और हिंसा-झूठ आदि दुष्कृत्य घटते जाते है, आत्मतेज बढ़ता जाता है, और अंत में सर्वपाप-त्याग का संयम-जीवन प्राप्त होता है।

भक्ति में असीम शक्ति है। भगवान् की भक्ति करने से जीवन में आमूल परिवर्तन होता है। परमात्मा की पूजा करते करते कालक्रमेण मनुष्य परमात्मा बन जाता है। भक्ति उसे कहते हैं जिससे अन्त में भगवान् के तुल्य स्वरूप उपलब्ध हो। पूजा वह है जिससे अन्त में आत्मा पूज्य परमात्मा का स्वरूप प्राप्त करे। अंजन की हुई जिनप्रतिमा की पूजा और भक्ति से हमें स्वयं जिनेश्वर बनना है। संक्षेप में जिनप्रतिमा जिनेश्वर बनने के लिए उत्तम आलंबन है।

जिनपूजा की सामान्य विधि

१. स्नान करके पूजा के निमित्त अलग रखे हुए स्वच्छ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साफ सुथरे वस्त्र पहनकर जिनमंदिर में जाना। जिनपूजा के समय पुरुषों को धोती और दुपट्टे का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।यह धोती रोज की रोज धोई हुई चाहिए जिससे पूर्व दिन का पसीना दूर हो।

२. जिनपूजा के समय की अवधि में अर्थात् घर से मंदिरजी जाते समय, व मंदिरजी से घर आते समय, तथा मंदिरजी में ठहरने के समय तक जिनेश्वर भगवान् के जीवन-प्रसंगो और उनके उपदेशवचनों के अतिरिक्त अन्य किसी विषय का या बात का विचार भी नहीं करना, मन में सतत भगवान् का रटन करना, उनके गुणों का चिंतन करना।

३. जिनपूजा के लिए अपने केशर, धूप, अगरबत्ती आदि द्रव्यों का उपयोग करना चाहिए। ऐसी अनुकूलता या सुविधा न हो तो मंदिरजी की ओर से बेचे जानेवाले इन द्रव्यों से पूजा करना। जिनपूजा के लिए अपनी अगरबत्ती, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, फल तथा घी का दीपक आदि ले जाना चाहिए।

४. जिनपूजा करते समय दुपट्टे के किनारे से आठ परत (तह) करके मुँह और नाक बाँधना। शान्त चित्त से हम पर भगवान् द्वारा किए गए उपकारों का स्मरण करते हुए भगवान को अभिषेक आदि कर के उनके नव अंगों की पूजा करना। ये नवांग क्रमशः इस प्रकार है,--

१. चरण, २. घुटना, ३. कलाई, ४. स्कंध या कंधा, ५. मस्तक का मध्य भाग, ६. ललाट, ७. कंठ, ८. हृदय, ९. नाभि।

जिनेश्वर भगवान् के इन नव अंगों की पहले चन्दन-केशर-वर्क

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से पूजा करना और तत्पश्चात् चरणों, घुंटनों, कंधों, मस्तक और हाथ में पुष्प चढ़ाना।

प्रभु के नवांग की पूजा करते समय क्रमशः निम्नलिखित दोहे पढ़ने चाहिए,--

जल भरी संपुट पत्रमां, युगलिक नर पूजंत,
ऋषभ चरण अंगूठडे, दायक भवजल अंत ॥ १ ॥
जानुबले काउस्सग्ग रह्या, विचर्या देश विदेश,
खडा खडा केवल लह्युं, पूजो जानू नरेश ॥ २ ॥
लोकांतिक वचने करी, वरस्या वरसी दान,
कर कांडे प्रभु पूजना, पूजो भवि बहुमान ॥ ३ ॥
मान गयुं दोय अंसथी, देखी वीर्य अनंत,
भुजाबले भवजल तर्या, पूजो खंध महंत ॥ ४ ॥
सिद्धशिला गुणऊजली, लोकांते भगवंत
वसिया तिणे कारण भवि, शिर-शिखा पूजंत ॥ ५ ॥
तीर्थंकर-पद पुण्यथी, तिहुअण जन सेवंत,
त्रिभुवन तिलक-समा प्रभु, भालतिलक जयवंत ॥ ६ ॥
सोल पहोर देइ देशना, कंठ विवर वर्तुल,
मधुर ध्वनि सुरनर सुने, तिन गले तिलक अमूल ॥ ७ ॥
हृदयकमले उपशमबले, बाल्या राग ने रोष,
हिम दहे वनखंड ने, हृदय तिलक संतोष ॥ ८ ॥
रत्नत्रयी गुण ऊजली, सकल सुगुण विश्राम,
नाभि-कमलनी पूजना, करतां अविचल धाम ॥ ९ ॥
उपदेशक नव तत्त्वना, तिणे नव अंग जिणंद,
पूजो बहुविध भावथी, कहे 'शुभवीर' मुणींद ॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ

जिस प्रकार कमल पत्र का संपुट (अंजलि) बनाकर उस में जल लेकर युगलियों ने भगवान ऋषभदेव के चरणों के अंगूठे की पूजा की थी, क्योंकि वे चरण ही भवसागर का अंत लानेवाले हैं। अतः हे भक्तों! उसी प्रकार तुम भी प्रभु की पूजाकर भवरूपी सागर पार करो ॥ १ ॥

जो घुटनों के बल से (प्रभु) काउस्सग्ग-ध्यान में स्थिर रहे, देश-विदेश में विचरण करते रहे और जिन पर खड़े ही खड़े रहकर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया, उन जगत्स्वामी के घुटनों की (हे भविजन) पूजा करो ॥ २ ॥

जिस हाथ से प्रभु ने लोकांतिक देवों की (तीर्थ स्थापन हेतु चारित्र की) प्रार्थना के पश्चात् वर्षीदान दिया, उसकी करकलाइ पर सबहुमान पूजा करो ॥ ३ ॥

प्रभु के अनन्त वीर्य की शक्ति देखकर दोनों कन्धों ने अभिमान छोड़ दिया, व प्रभु अपने अनन्त भुजबल के-पराक्रम से भवरूपी जल से पार हो गए, उन महान कन्धों की पूजा करो ॥ ४ ॥

लोक के (ऊपर के मस्तक स्थान रूप अंत में गुण से उज्ज्वल (शुद्ध) सिद्धशिला है। वहाँ भगवान् का निवास है। इसीलिए भव्यलोग शिर-शिखा-मस्तक के शिखास्थान की पूजा करते हैं ॥ ५ ॥

तीनों लोक के जीव तीर्थंकर-नामकर्म नाम के पुण्य के प्रभाव से जिनकी पूजा करते हैं, उन त्रिभुवन के तिलक समान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(यानी जगत्-शिरोमणि) प्रभु के ललाट पर तिलक करो, जिससे तुम जयशील बनोगे ॥ ६ ॥

जिस कंठ के भीतरी वर्तुल खोखले या पोले भाग से वाणी निःसृत कर (वीर प्रभु ने) १६ प्रहर उपदेश दिया, जिसकी (अमूल्य) मधुर ध्वनि मानवों और देवों ने सुनी, उस कंठ पर अनमोल तिलक करो। वह तुम्हें अनमोल लाभ देनेवाला है ॥ ७ ॥

जिस प्रकार (शीतल होने पर भी) हिम-बरफ पडने से वन का भाग जल जाता है-नष्ट हो जाता हे, उसी प्रकार (शीतल होने पर भी) उपशम बल से यानी शान्तसुधारस भाव से हृदय कमल में प्रगट हुई अत्यंत शांति-शीतलता से रागद्वेष रूप पेड-समूह को भगवान ने दग्ध कर दिया। ऐसे प्रभु के हृदय पर किया गया तिलक हमारे में संतोष यानी उपशम भाव उत्पन्न करो ॥ ८ ॥

जिनके नाभिस्थान रूप कमल समस्त गुणों के विश्रामभूत ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय शुद्ध रत्नत्रयी से उज्ज्वल है, उस नाभि कमल की पूजा करो। यह करने से अविचल धाम अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥

प्रभु नवतत्त्व का उपदेश देते हैं। अतः जिनेश्वर प्रभु के नव अंगों की अनेक प्रकार से (केसर-चंदन-कुसुम आदि द्वारा) पूजा करो। मुनियों में इन्द्र समान जगत्वत्सल शुभवीर प्रभु का ऐसा कथन है।

('शुभवीर' इस पद से पू. मुनिराज श्री शुभविजयजी म. के शिष्य मुनिराज श्री पंडित वीरविजयजी म. कवि का इन दोहों के कर्तारूप में नाम सूचित होता है) ॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवाङ्ग का परिचय और नवाङ्गी पूजा में प्रार्थना

पंडित श्री वीरविजयजी म. ने इन दोहाओं में भगवान् के द्वारा किए गए त्याग और साधना का वर्णन किया है। चौबीस तीर्थंकरों में से किसी भी भगवान की तिलक-पूजा करें उस समय जिस अंग को स्पर्श किया जाय उसमें निम्नलिखित प्रकार से भगवान् के जीवंत चित्र की मन में कल्पना या विचारणा करनी चाहिए।

अंग - १ चरण

हे भगवन्! आपके जिन चरणों को चूम कर बड़े बड़े गणधर व इन्द्रगण पवित्र हुए हैं उनका मैं भी स्पर्श करता हूँ मुझे पवित्र करें।

हे भगवन्! भव्य जीवों को प्रतिबोधित करने के लिए आपने अनेक स्थानों में विहार किया। विश्व पर आपका असीम और अनन्त उपकार है। अतः आपके चरण धोकर हमारे सर पर लगाने योग्य हैं।

हे भगवन्! आपकी चरण - पूजा के प्रभाव से मुझे ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि जिससे मैं भी स्वपर हितकारी विचार कर सकूँ।

[भगवान महावीर स्वामी की पूजा करते समय वह प्रसंग याद कर सकते है कि जब इन्द्र का संशय हटाने हेतु उन्होंने बालरूप में अंगूठे से मेरू को कंपायमान कर अरिहंत की अनन्त शक्ति का परिचय दिया था।]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंग - २.जानु-घुटने

हे भगवान्! आपने लेशमात्र भी थकान की परवाह न करते हुए जानु के बल पर खड़े पाँव कायोत्सर्ग - ध्यान में स्थित होकर उत्कृष्ट आत्मसाधना की, आत्मध्यान किया। साधना और ध्यान के कारण आप के जानु भी पूज्य बन गए।

हे कृपालो! आपकी जानुपूजा के प्रभाव से मुझे भी ऐसा सामर्थ्य मिले कि मैं भी अविचलरूप से और अप्रमत्त भाव से मोक्ष मार्ग की साधना व आत्मध्यान कर सकूँ ।

अंग - ३.हस्त कलाई (कांडे)

हे भगवन्! आपके हस्त की किन शब्दों में प्रशंसा करूँ? आपके पास पुष्कल ऋद्धि और सिद्धि थी, तथापि आपने इसका उपयोग क्या किया? परमात्मस्वरूप प्राप्त कर भव्य जीवों को तारने के लिए चारित्र्यग्रहण करने हेतु, आपसे लोकांतिक देवों की विज्ञप्ति के बाद, आपने स्वयं अपने हाथों से एक वर्ष तक रोज का १०८ लक्ष सुर्वण का दान चालू रखा। वह भी इस रीति से कि दायें हाथ से किए गए दान का बायें हाथ को पता न चले। मतलब आपने इस महासुकृत की किसी के आगे बडाई नहीं गाई।

आपने इसी हाथ से आपकी शरण में आनेवालों को अभयदान व चारित्रदान भी दिया। धनदान और अभयदान के कारण आपके हाथ (हथेली) के कांडे भी पूज्य हैं।

हे भगवन्! आपकी करपूजा के प्रभाव से मेरे भी हृदय में यह भावना प्रगट हो कि मैं भी समस्त भौतिक पदार्थों व हिंसा का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्याग कर सकूं, मुझे ऐसा जीवन जीने की क्षमता प्राप्त हो की मेरे परिचय में आनेवाले सभी निर्भयता का अनुभव करें।

अंग - ४.स्कंध (कंधा)

हे भगवन्! आपने अपने कन्धों से अभिमान दूर कर दिया। जब मनुष्य अभिमान करता है, तब उसके स्कन्ध ऊचे हो जाते हैं। भगवन्! आप अनन्त बलवाले होते हुए भी आपके ऊपर बड़े से बड़े अत्याचार करनेवाले अल्पबली भी दुर्जन के सन्मुख भी आपने गर्व से कंधा ऊचा नहीं उठाया।

हे भगवन्! आपने अपने कंधों पर अनेक जीवों के आत्मोद्धार का उत्तरदायित्व उठाया था। वह भी किसी प्रकार के प्रत्युपकार की अपेक्षा न रखते हुए! आपने जिनकी जिम्मेदारी ली, उन्हें आपने पार लगाया। जिन कंधों ने ऐसा महान् उत्तरदायित्व सफलतापूर्वक निभाया हैं, उनकी मैं पूजा करता हूँ।

हे भगवन्! आपकी स्कंध-पूजा से मुझे भी ऐसा सामर्थ्य प्राप्त हो कि मेरे भाग में आई कल्याण जवाबदारी, मैं किसी भी प्रकार के बदले की आशा अथवा अपेक्षा के बिना, सफलतापूर्वक वहन कर सकूँ। आपके कंधों की पूजा से मेरे कंधों और हृदयमें से मेरा गर्व दूर हो जाए।

अंग - ५.मस्तक

हे भगवन्! १४ राजलोक के मस्तक (शीर्ष) स्थानीय अग्रभाग पर रही उज्ज्वल गुणवाली सिद्धशिला पर आप बसे हैं इसलिए भवी जीव आपके शीर्षाग्र की पूजा करते हैं।

हे भगवन्! आपको जब भी जहाँ भी औरों ने देखा है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब तथा वहाँ आपको अपने दिमाग में सतत पर-हित का ही चिन्तन करते हुए देखा है। दिमाग में आपने सदैव सब जीवों के आत्मकल्याण का ही विचार किया है। इस आत्मचिंतन और आत्मध्यान में अनवरत लीन आपका दिमाग यानी मस्तक वस्तुतः पूज्य है।

हे भगवन्! आपकी मस्तक-पूजा के प्रभाव से मुझे भी सिद्धशिला पर वास एवं तदर्थ ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि मैं हर क्षण आत्मचिंतन में रहूँ, परहित के विचार में रहूँ।

अंग - ६.ललाट

हे भगवन्! त्रिभुवन के लोग अपने ललाट पर आपके चरण को तिलक रूप में लगाते हैं, अतः आप त्रिभुवन-तिलक है।

हे भगवन्! आप त्रिकालज्ञानी थे। आप जानते थे कि आपके ललाट पर क्या लिखा है। तथापि आपने अपनी आत्मसाधना लगातार चालू रखी थी। अज्ञानियों ने आपको अनेक कष्ट दिए। ऐसे अवसरों पर आप विचलित नहीं हुए, कष्टों से भागे नहीं। दुखित नही हुए। देवताओं, राजाओं, और स्थिति-संपन्न जनों ने आपकी अर्चना की। उससे आप हर्षित नहीं हुए। शिष्ट व दुष्ट की ओर से पूजा और पीड़ा दोनों प्रसंगों में आप समभाव में ही स्थिर रहे। आपके ललाट की रेखाओं और नसों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। ऐसे सम और शांत ललाट की मैं पूजा करता हूँ।

हे भगवन्! आपके ललाट की पूजा के प्रभाव से मुझे ललाट पर ऐसी श्रद्धा प्राप्त हो कि जिससे ललाट-अंकित को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्या करने अथवा ललाट लिखित दुःखों में राहत पाने के लिए मैं अनुचित प्रयत्न में या दोरे, धागे, मंत्र, ताबीज आदि के प्रलोभन में न पड़ूं तथा सतत आत्मसाधना करता हुआ दुःख-सुख में समताधारी रह सकूँ।

अंग - ७.कंठ

हे भगवन्! आपने कैवल्य प्राप्ति के बाद वर्षों तक पृथ्वी पर भ्रमण कर उपदेश का पुष्करावर्त मेघ बरसाया जिससे हम अतीव उपकृत हुए हैं। आपने हमारी अनेक शंकाओं का समाधान किया है। हमारे आत्मोद्धार के लिए आपने तत्त्वों की तथा मोक्षमार्ग की मंजुल, दिव्यवाणी का स्रोत प्रवाहित किया। आपके कंठ ने तो जादू या चमत्कार किया। आपकी वाणी का श्रवण कर अनेक जीव भवसागर पार कर गयें!

हे भगवन्! आपकी कंठपूजा के प्रभाव से (i) हममें ऐसी शक्ति प्रगट हो कि जिससे हमारी वाणी द्वारा स्वपरहित हो, तथा (ii) आपके मौन के समान मौन से हम आत्मनिष्ठ बन सकें।

अंग - ८.हृदय

हे भगवन्! मैं जब आपके हृदय की कल्पना करता हूँ उस समय मेरा रोम-रोम हर्षित हो उठता है। आपका हृदय उपशमित, निःस्पृह, कोमल और करुणामय था। आपके हृदय में हमेशा और निरन्तर प्राणीमात्र के प्रति प्रेम का सागर उमड़ता था। वह मैत्रीभाव से धड़कता रहता था। शरणागत को आप हृदय से लगाते थे।

हे प्रभो! आपकी हृदय-पूजा के प्रभाव से पुनः पुनः यही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रटना लगाता हूं कि मेरे हृदय में सदैव निःस्पृहता, प्रेम, करुणा और मैत्रीभाव ही प्रवाहित हो।

अंग - ९. नाभि

हे भगवन्! हमें आपके द्वारा नाभि-कमल में किये गए ध्यान की प्रक्रिया सीखनी है। आपने श्वासोच्छ्वास को नाभि में स्थिर करके, मन को आत्मा के शुद्ध स्वरूप से संबद्ध कर ध्याता, ध्यान और ध्येय को एकरूप बनाया। ऐसा करके आपने उत्कृष्ट समाधि सिद्ध की थी।

हे प्रभो! आपकी नाभिपूजा के प्रभाव से मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो कि मैं भी अपने प्राण (श्वास) को नाभि में स्थिर करके आत्मा के सहज स्वरूप में लीनता रूप समाधि का अनुभव कर सकूँ।

इस प्रकार जिनेश्वर भगवान की शुद्ध भाव से पूजा करने के फल में मलिन मन निर्मल बनता है, उसमें शुभ भावनाएँ जाग्रत् होती हैं। निर्मल मन और शुद्ध भावना से चारित्र में सुदृढता आती है। उससे कर्मों का भरसक क्षय होता है। कर्मक्षय से आत्मा परमात्मा बन जाती है, जीव शिव हो जाता है, जैन जिन बनता है, श्रावक साधु (यानी साधक) बनकर सिद्ध हो जाता है।

ऐसी भावना के साथ जिनपूजा करने के पश्चात् चैत्यवंदन करना चाहिए जिसकी विधि अन्यत्र दी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गद्य-प्रार्थना

[प्रतिदिन बोलकर प्रार्थना करो]

हे अरिहंत ! हे भगवंत ! हे वीतराग ! हे अभयदाता ! हे आत्मोद्धारक ! हे कर्मविनाशक ! हे गीर्वाणगुरुगुरो ! हे चारित्रमूर्ति ! हे छद्मस्थभावातीत ! हे जगद्गुरु जिनेश्वर ! हे त्रिभुवनपति तीर्थंकर ! हे दीनोद्धारक ! हे धर्मधुरंधर ! हे निरंजन निर्विकार नाथ ! हे परमपुरुष परमेश्वर ! हे निर्बलों के बल ! हे अनाथों के नाथ ! हे बांधवहीनों के बांधव ! हे भाग्यविधाता ! हे मंगलमूर्ति ! हे भव्यस्फूर्ति ! हे कल्याण-आकृति ! हे मोक्षदाता ! हे यतीन्द्र ! हे गणधरसेवित ! हे राजेश्वर-सुरेश्वरपूजित ! हे लोकालोक-प्रकाशक ! हे विश्वजीववत्सल ! हे शासननायक ! हे सत्त्वशिरोमणि ! हे हितहेतु ! हे क्षमामूर्ति ! हे ज्ञानानन्दपूर्ण !.....

इत्यादि अनेकानेक सत्य विशेषणों से अलंकृत हे हमारे हृदय के स्वामिन् अरिहंत प्रभो ! इस संसार में केवल आप ही ऐसे है कि आपका ध्यान करनेवाले भव्य जीव आपके तुल्य हो जाते हैं। भ्रमरी के गुंजन से लट भ्रमरी बन जाती है। इसी प्रकार उपर्युक्त विशेषणों से आपका गुंजन करते करते, मैं भी ऐसे विशेषणों से युक्त बन जाऊँ, यही मेरी प्रार्थना है।

हे अरिहंत परमात्मन् ! आप ही मेरे एक आधार है। आपकी कृपा और प्रभाव से ही संसारी जीवों का इस अनन्त दुःखमय संसार से छुटकारा होता है ओर उन्हें मोक्ष मिलता है। संसार के पदार्थ राग-द्वेषादि विकारों के कारण है। आप स्वयं वीतराग, निर्विकार हैं, अतः आपका ध्यान करते रहने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग-द्वेषादि कम हो जाते हैं, आपके ध्यान से ही यावत् इनका सर्वथा संपूर्ण अन्त हो जाता है, इसलिए जीव को संसार से छूटकारा और मोक्ष मिलता हैं। यह सब कुछ आपका ध्यान करने से ही होता है, फलतः आपके ही प्रभाव से मोक्ष प्राप्त होता है।

हे प्रभो! आपने संसार को ठीक ही समझाया है कि यह संसार दुःखमय है। कारण यह है कि इसमें जन्ममरण का चक्र चलता रहता है। उच्च देव-जन्म पाकर भी मरना पड़ता है! बाद में अति तुच्छ अशुचि स्थान में जाना पड़ता है, वहाँ अशुद्ध गन्दा आहार करना पड़ता है। अन्यच्च, संसार में रोग, शोक, दरिद्रता, मारपीट, अपमान, दुर्घटना, चिंता, भय, संताप आदि दुःखो का पार नहीं। इसीलिए प्रभो! आपने सकल संसार के त्याग का ही पुरुषार्थ करके अपनी आत्मा का संसार में से उद्धार किया। अतः मैं आपसे यही याचना करता हूँ कि ऐसे दुःखमय, विडम्बनामय और पापों व पराधीनता से भरपूर संसार के प्रति मुझे भी तीव्र घृणा हो, वैराग्य हो। आप मेरे मन में ग्लानि, उद्वेग, अरुचि उत्पन्न कर योग्य पुरुषार्थ द्वारा मुझे मोक्ष दिलवाओ।

हे करुणासिंधो! आपने पूर्व भवों से ही कितनी महान् अद्‌भुत धर्म-साधना की थी! हे महावीर देव! आपने तो पूर्व के तीसरे यानी २५ वें भव में एक लाख वर्ष तक सतत मासखमण के पारणे मासखमण किये। इसकी तुलना में मैं क्या करता हूँ? खानपान का संसार मुझे कहाँ खटकता है? मुझे खानपान खोटा कहाँ प्रतीत होता है? प्रभो! इस कुटिल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहार-संज्ञा से मेरी रक्षा करो। मैं आपके स्वरूप का ऐसा ध्यान करूँ कि मुझे पापी आहार-संज्ञा से घृणा हो जाए।

हे त्रिभुवननाथ! आपका जन्म होने पर स्वर्ग की बड़ी साम्राज्ञी दिक्कुमारियों ने आपको स्नान कराया, लाड़ प्यार किया, रास गीत गाया, बाद में ६४ इन्द्रों ने मेरू शिखर पर आपका जन्ममहोत्सव मनाया। तदपि आपने लेशमात्र अभिमान नहीं किया। इस मानपान में आपने न तो कोई आत्मा की बडाई देखी, न आत्मसिद्धि। हाँ पुण्यकर्म की लीला देखी। दूसरे की लीला में अभिमान कैसा? प्रभु! आपके जन्म की अपेक्षा मुझे तो राख और धूल जैसा जन्म मिला है, तो भी मैं अभिमान से भरपूर हूँ!

हे जगन्नाथ! आपको जन्म से ही राजकीय भोग-सुख प्राप्त हुए, राजवैभव मिला। तो भी आप उससे तनीक भी लिप्त नहीं हुए, हर्षित नहीं हुए, क्योंकि आपने इसमें आत्महित नहीं देखा। इसकी तुलना में मुझे क्या मिला है? ठीकरें! इनकी प्राप्ति में कुछ भी सार या लाभ नहीं, तो भी मेरी आसक्ति का पार नहीं! प्रभो! प्रभो! मेरा क्या होगा? मुझे ऐसा बल दो कि मैं इस संसार के वैभव और सुखभोगों को तुच्छ समझूं, भयानक जानूं, इन पर मुझे किंचित् मान न हो, राग न हो। आप मुझे कोहिनूर हीरे के समान मिले हैं, उसी प्रकार का मुझे आपका धर्म मिला है। इसकी तुलना में यह सुखसंपत्ति काँच के टूकड़े जैसी है। मैं इसमें राग-मोह क्यों करूं? यदि मैं आपकी अपेक्षा इस सुख-संपत्ति को मूल्यवान समझूं तो इसका अर्थ यह होगा कि मैं आपको पहचान ही नहीं पाया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे जिनेश्वर भगवन्! आपने चारित्र ग्रहणकर कितना महान् तप किया! कैसे कैसे परिसह और उपसर्ग सहे! दिन रात कायोत्सर्ग में खड़े रहकर कैसा उग्र ध्यान किया! इसमें अपनी काया पर रत्ती भर भी ध्यान नहीं रखा। अतिसुकोमल भी शरीर में बड़ी भारी सहनशीलता धारण की। इसके समक्ष मेरी साधना में मैंने क्या कष्ट रखा है? नाथ! मुझे सहिष्णु बनाकर ऐसी साधना की शक्ति दो।

हे जगदीश! आपके सदृश नवतत्त्वों का उपदेश और किसने दिया है? 'अंततोगत्वा सूक्ष्म पृथ्वीकाय, अप्काय और निगोद तक भी जीव होते हैं',-- इस तथ्य को बताने वाले आप ही थे। इनकी रक्षा करने तक का अहिंसा-धर्म भी आपने ही बताया। सूक्ष्म जीवों को अभयदान देने तक का सच्चा साधु-जीवन आपके मोक्ष मार्ग में ही उपलब्ध है। अन्य धर्म में तापस बनकर वन में निवास तो करे परन्तु वहाँ जल, वनस्पति आदि के जीवों की हिंसा की छूट! वहाँ सर्वथा अहिंसामय चारित्र कहाँ रहा? वस्तुतः पूर्ण अहिंसा का जीवन यदि कहीं है तो वह जैन साधु-जीवन में ही है। वह भी मानवभव में ही संभव है। यह उपदेश देकर आपने हमें मानवभव का अमूल्य मूल्यांकन व सच्चा कर्तव्य बताया।

हे जगदाधार! इसी प्रकार आश्रव-संवर का विवेक भी आपके शासन में ही दृष्टिगोचर होता है। 'अविरति कर्मबंधन का कारण है' यह बात आपके सिवा और किसने कही है? 'पाप न करने पर भी उसके त्याग की प्रतिज्ञा के अभाव में, यानी विरति के अभाव में, कर्मबंधन होता है' यह उपदेश भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपका है। समिति-गुप्ति का उपदेश भी आप ही के धर्म में है। प्रायश्चित का विशद वर्णन, कर्मसिद्धांत, कर्म की १५८ प्रकृति, उनकी स्थिति, उन के रस व प्रदेश, एवं बंध-उदय-उदीरणा-संक्रमण-अपवर्तना-निकाचना-उपशमना, १४ गुणस्थानक, और अनेकांतवाद आदि पर आपने विस्तृत विचार बताए। ये सब जैनधर्म की ही विशेषताएँ हैं। ये विश्व को आप ही की विशिष्ट देन हैं। इस प्रकाश के बिना कल्याण कैसे हो?

हे अरिहंतदेव! अज्ञानान्धकार में भटकने वाले हम लोगों को आपने अपने जीवन का आलंबन देकर भी भव्य उपकार किया है। इससे हमें सभी साधना व आप की आराधना का बल मिला है। आपके आलंबन में मन पवित्र तथा उच्च साधना से परिपूर्ण रहता है। हे प्रभो! आपने जीव-अजीव आदि तत्त्वों का, अनेकान्तवादादि सिद्धान्तों का, एवं सच्चे मोक्षमार्ग का सत्य प्रकाश प्रदान कर हम पर असीम उपकार किया है। आप यथार्थ धर्मचक्रवर्ती हैं। आपकी सेवा के प्रभाव से हमें यह प्रकाश प्राप्त हो, मोक्ष-मार्ग की उच्चसाधना मिले, हमारी काम-क्रोधादि की वासनाएँ नष्ट हों, आहारादि पापसंज्ञाएँ दूर हों, रागद्वेष के बन्धन कटते जाएँ, किसी जड़पदार्थ पर..... यहाँ तक कि मेरी देह पर भी मुझे आसक्ति न रहे। हम मात्र अपनी आत्मा में ही लीन रहें, शुद्ध ज्ञान, दर्शन, व चारित्र में ही तन्मय हों, यही हमारी प्रार्थना है।

चैत्यवंदन

सकल कुशल वल्लिः पुष्करावर्तमेघो,
दुरिततिमिरभानुः कल्पवृक्षोपमानः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवजलनिधिपोतः सर्वसंपत्ति हेतुः
स भवतु सततं वः श्रेयसे शांतिनाथः ॥

(१) श्री शत्रुंजय का चैत्यवंदन

श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र, दीठे दुर्गति वारे,
भावधरीने जे चढे, तेने भव पार उतारे ॥ १ ॥

अनंत सिद्धनुं एह ठाम, सकलतीर्थनो राय,
पूर्व नवाणुं ऋषभदेव, ज्यां ठविया[१] प्रभु पाय ॥ २ ॥

सूरजकुंड सोहामणो, कवड जक्ष अभिराम,
नाभिराया कुल मंडनो, जिनवर करूं प्रणाम ॥ ३ ॥

(२) श्री सीमंधरस्वामी का चैत्यवंदन

श्री सीमंधर जगधणी ! आ भरते आवो,
करुणावंत करुणा करी, अमने[२] वंदावो,
सकल भक्त तुमे धणी, जो होवे अम[३] नाथ,
भवोभव हुं छुं ताहरो[४], नहीं मेलुं हवे साथ ॥ १ ॥

सयल संग छंडी[५] करी ए, चारित्र लइशुं,
पाय तुमारा सेवीने, शिव-रमणी वरशुं,
ए अलजो[६] मुजने घणो, पूरो सीमंधर देव,
इहांथकी हुं विनवुं, अवधारो मुज सेव ॥ २ ॥

---

१. पधारे, पदार्पण किया, २. हमें ३. हमारे ४. तुम्हारा ५. छोड़कर
६. अभिलाषा

(३) श्री पार्श्व-प्रभु का चैत्यवंदन

जय चिंतामणि पार्श्वनाथ, जय त्रिभुवन स्वामी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्ट कर्म रिपु जीतीने पंचमी गति पामी ॥ १ ॥

प्रभु नामे आनंदकंद, सुखसंपत्ति लहीए,
प्रभु नामे भव भव तणां[१] पातक सब दहीए ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं वर्ण जोडी करीए, जपीए पारस नाम,
विष अमृत थइ परगमे(परिणमे), पामे अविचल धाम ॥ ३ ॥

(४) सामान्यजिन चैत्यवंदन

तुज मूरति ने[२] नीरखवा, मुज नयणां तरसे,
तुम गुणगणने बोलवा, रसना मुज हरखे ॥ १ ॥

काया अति आनंद मुज, तुम पद युग फरसे,
तो सेवक तार्या विना, कहो किम हवे सरशे ? ॥ २ ॥

एम जाणीने साहिबाए, नेक[३] नजर मोहे जोय,
ज्ञानविमल प्रभु-नजर थी,[४] ते शुं[५] जे नवि होय ॥ ३ ॥

(५)

पद्मप्रभ ने वासुपूज्य, दोय राता[६] कहीए,
चंद्रप्रभ ने सुविधिनाथ, दो उज्ज्वल लहीए ॥ १ ॥

मल्लिनाथ ने पार्श्वनाथ, दो नीला नीरख्या,
मुनिसुव्रत ने नेमनाथ, दो अंजन सरिखा ॥ २ ॥

सोले जिन कंचन समा, एवा जिन चोवीश,
धीर विमल कविरायनो (पंडित तणो),
ज्ञानविमल कहे शिष्य ॥ ३ ॥

१. के २. को ३. रहम ४. से ५. क्या ६. लाल रंग के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तवन विभाग

(१) सामान्यजिन-स्तवन

(राग - मालकोश)

हो जिन तेरे चरण की शरण ग्रहूं,
हृदयकमल में ध्यान धरत हूँ,
शिर तुज आण वहूँ... १ हो जिन
तुज सम खोल्यो देव खलक[१] में,
पेख्यो नहीं कबहुं... २ हो जिन
तेरे गुणों की जपुं जपमाला,
अहनिश[२] पाप दहूँ... ३ हो जिन
मेरे मन की तुम सब जानो,
क्या मुख बहोत कहूं... ४ हो जिन
कहे जसविजय करो त्युं साहिब,
ज्युं भव दुःख न लहूँ... ५ हो जिन

(राग - दुर्गा) (२)

क्युं कर भक्ति करूँ प्रभु तेरी..... ? (२)
क्रोध, लोभ, मद, मान, विषयरस छांडत गेल[३] न मेरी, क्युं...
कर्म नचावे तिमहि नाचत माया वश नटचेरी, क्युं'...
दृष्टि राग दृढ बंधन बांध्यो, निकसन न रही शेरी[४], क्युं...
करत प्रशंसा सब मिल अपनी, परनिंदा अधिकेरी क्युं...
कहत मान जिन भावभगति बिन शिवगति होत न मेरी, क्युं...

१. विश्व, सृष्टि, जगत् २. दिनरात ३. पीछा ४. गली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) सामान्यजिन-स्तवन

लाग्या नेह जिन चरणे हमारा,
जिम चकोर चित्त चंद पियारा चंद पियारा....।
सुनत कुरंग[१] नाद मन लाइ,
प्रान तजे पर प्रेम निभाइ,
घन तज पानी न जाचत जाइ,
ए खग चातक केरी बडाइ, लाग्या नेह... ॥१॥
जलत निःशंक दीपके मांही,
पीर पतंग कु होत के नाहीं ?
पीड़ा होत तदपण तिंहा जाही, (जाइ)
शंका प्रीतिवश आवत नाहीं लाग्या नेह.... ॥२॥
मीन मगन नहीं जलथी न्यारा,
मानसरोवर हंस आधारा,
चोर नीरख निंशि अति अंधियारा,
केकी मगन सुन फुन गरजारा लाग्या नेह ॥३॥
प्रणव ध्यान जिम जोगी आराधे,
रसरीति रस साधक साधे,
अधिक सुगंध केतकी में लाधे,
मधुकर तस संकट नवि वाधे, लाग्या नेह ॥४॥
जाका चित्त जिहां थिरता माने,
ताका मरम तो तेहि ज जाने,
जिनभक्ति हिरदे में ठाने,
चिदानंद मन आनंद आने, लाग्या नेह.... ॥५॥

१. हिरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(राग - आशावरी) (४)

आनंद की घड़ी आई, सखीरी ! आज आनंद की घड़ी आई,
करके कृपा प्रभु दरिसण दीनो, भव की पीर मिटाई,
मोह-निद्रा से जाग्रत करके, सत्य की शान सुनाई,
तन मन हर्ष न माई...सखीरी आज... ॥ १ ॥

नित्यानित्य का तोड बताकर, मिथ्या दृष्टि हराई,
सम्यग्ज्ञान की दिव्य प्रभा को अंतर में प्रगटाई,
साध्य-साधन दिखलाई...सखीरी आज... ॥ २ ॥

त्याग-वैराग्य-संयम के योग से निस्पृह-भाव जगाई,
संग सर्व परित्याग करा कर, अलख धून मचाई,
अपगत दुःख कहलाई...सखीरी आज... ॥ ३ ॥

अपूर्वकरण गुणस्थानक सुखकर, श्रेणी क्षपक मंडवाई,
वेद तीनों का छेद करा कर, क्षीण-मोही बनवाई,
जीवन-मुक्ति दिलाई...सखीरी आज... ॥ ४ ॥

भक्तवत्सल प्रभु ! करुणासागर, चरणशरण सुखदाई,
जस कहे ध्यान प्रभु का ध्यावत, अजर अमर पद पाई,
धंध (द्वन्द) सकल मिट जाई...सखीरी आज... ॥ ५ ॥

(राग - दुर्गा) (५)

काम सुभट गयो हारी रे...थाशुं[१] काम सुभट गयो हारी,
रतिपति[२] आण वसे सहु सुरनर, हरि हर ब्रह्म मुरारि रे.... थाशुं

गोपीनाथ विगोपित कीनो, हर अर्धाङ्गितनारी रे.... थाशुं

---

१. आपसे, २. कामदेव,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेह[३] अनंग[४] कियो चकचूरा, ए अतिशय तुज भारी रे.... थाशुं
तेह साचूं जिम नीर प्रभावे, अग्नि होत सवी छारी रे.... थाशुं
पण वडवानल प्रबल जब प्रगटे, तब पीबत सवी [५]वारी रे.... थाशुं
एणी परे तें अति दहवट कीनो, विषय अरति-रति वारी रे.... थाशुं
नयविमल प्रभु तुंहि नीरागी, महा मोटो ब्रह्मचारी रे.... थाशुं

(राग - माढ) **(६)**

आवो मुज मन धाम, प्रभुजी आवो...
सम अमारा तुमे न मानो, हाथ न झालो दाम,
नेह नजरशुं कोई न निहालो, वीतराग तुज नाम.... प्रभुजी
कोइ हरिहर बंभन माने, कोइने मन राम,
हूं सरागी वीतरागनो रे, मोहियो गुण ग्राम.... प्रभुजी
तुंही तुंही तुंही तुंही, जाप जपतां आम,
केइ शुभरागे भव तर्या इम, केता कहूँ स्वाम.... प्रभुजी
लहे सरागी शुभ भावशुं वीतरागता परिणाम,
तेहने शी खोट जस शिर, तुं ही आतमराम.... प्रभुजी

(राग - भीमपलास) **(७)**

जिणंदा ! वे दिन क्युं न संभारे ?[६]
साहिब तुम हम काल अनंतो, इकठा इण संसारे.... जिणंदा
आप अजर अमर होइ बैठे, सेवक करीय किनारे,
मोटा जेह करे ते छाजे, तिंहा तुमने कुण वारे.... जिणंदा

---

३. वह, ४. कामदेव, ५. पानी. ६. याद करें.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिभुवन ठकुराइ अब पाइ, कहो तुम को कुण सारे,
आप उदासीन भाव में आये, दासकुं क्युं न सुधारे.... जिणंदा

तुंही, तुंही, तुंही, तुंही, तुंही जे चित्त धारे,
याही हेतु जे आप स्वभावे, भवजल पार उतारे.... जिणंदा

ज्ञानविमल गुण परमानंदे, सकल समीहित सारे,
बाह्य आभ्यंतर ईति उपद्रव अरियण[२] दूर निवारे.... जिणंदा

श्री सीमंधर जिन स्तवन

तारी मूरतिए मन मोह्युं[३] रे..मनना मोहनिया,
तारी सूरतिए जग सोह्युं रे...जगना जीवनिया...१

तुम जोतां सवि दुरमति वीसरी, दिनरातडी नवी जाणी,
प्रभु गुण गुण सांकलशुं बांध्युं, चंचल चित्तडुं ताणी रे मनना...२

पहेलां तो एक केवल हरखे, हेजालु थइ हलियो,
गुण जाणीने रूपे भलियो, अभ्यंतर जइ मलियो रे मनना...३

वीतराग इम जस निसुणीने, रागी राग धरे,
आप अरूपी राग निमित्ते, दास अरूप करेह रे मनना...४

श्री सीमंधर तुं जगबंधु, सुंदर ताहरी वाणी,
मंदर भूधर अधिक धीरज धर, वंदे ते धन्य प्राणी रे मनना...५

श्री श्रेयांसनरेसर-नंदन, चंदन शीतल वाणी,
सत्यकी माता, वृषभ लंछन प्रभु, ज्ञानविमल गुण खाणी रे
मनना...६

१. याद किए, २. अरिजन, ३. मुग्ध हुआ.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२)

श्री सीमंधर साहिबा ! हुं केम आवुं तुम पास,
तुम वच्चे अन्तर घणुं, मने मलवानी घणी होंश
हुं तो भरतने छेडे ॥ १ ॥

हुं तो भरतने छेडले[१] कांइ, प्रभुजी विदेह मोझार[२]
डुंगर[३] वच्चे दरिया घणां कांइ, कोशमां कोश हजार ॥ २ ॥

प्रभु देता हशे देशना कांइ, सांभले त्यांना लोक,
धन्य ते गाम नगर पुरी जिहां, वसे छे पुण्यवंत लोक ॥ ३ ॥

धन्य ते श्रावक श्राविका जे, निरखे तुम मुख चंद
पण ए मनोरथ अम तणा क्यारे, फलशे भाग्य अमंद ॥ ४ ॥

वर्तीए वार्ता जुओ कांइ, जोषीए[४] मांड्या लगन
क्यारे सीमंधर भेटशुं, मने लागी एह लगन ॥ ५ ॥

पण कोई जोशी नहि एहवो, जे भांजे मननी भ्रांत
अनुभव मित्र कृपा करे, तुम चरण तणे एकांत ॥ ६ ॥

वीतराग भाव ग्रही तुमे, वर्तो छो जगनाथ
में जाण्युं तुम कहेणथी स्वामी, थयो हुं आज सनाथ ॥ ७ ॥

पुष्कलावती विजय वसो कांइ, नयरी पुंडरीगिणी सार
सत्यकी-नंदन वंदना, अवधारो गुणना धाम ॥ ८ ॥

श्रेयांस नृपकुल चन्दलो कांइ, रुक्मिणी राणीनो कंत
वाचक रामविजय कहे तुम, ध्याने मुज मन शांत ॥ ९ ॥

---

१. अन्त में २. विद्यमान ३. पर्वत ४. ज्योतिषी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री सिद्धिगिरिजी के स्तवन

(१)

(राग दुर्गा)

क्युं न भये हम मोर विमलगिरि, क्युं न भये हम मोर ...१
सिद्धवड रायण रुख की शाखा, झूलत करत झकोर,
विमलगिरि ...२
आवत संघ रचावत आंगियां, गावत गुण घमघोर, विमलगिरि
...३
हम भी छत्रकला करी निरखत, कटने कर्म कठोर, विमलगिरि
...४
मूरत देख सदा मन हरखे, जैसे चंद चकोर, विमलगिरि ...५
श्री रिसहेसर दास तिहारो, अरज करत करजोर, विमलगिरि
(राग - सारंग) (२) ...६

मोरा आतमराम ! कुण दिन शेत्रुंजे जाशुं...
शेत्रुंजा केरी[१] पाजे[२] चढंतां, ऋषभ तणां गुण गाशुं.... मोरा...१

ए गिरिवरनो महिमा सुणीने, हियडे समकित वासु,
जिनवर भावसहित पूजीने, भवे भवे निर्मल थाशुं.... मोरा...२

मन वच काया निर्मल करीने, सूरजकुंडे न्हाशुं,
मरुदेवीनो नंदन नीरखी, पातक दूरे पलाश्युं[३].... मोरा...३

इण गिरि सिद्ध अनंता हुआ, ध्यान सदा तस ध्याशुं,
सकल जनममां ए मानव भव, लेखे करीय सराशुं.... मोरा...४

१. की, २. सीढी, पगथी, ३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरवर पूजित पदकज रज, मिलवट तिलके चढाशुं,
मनमां हर्षी डुंगर[१] फरसी, हैडे हरखित थाशुं... मोरा...५

समकित धारी स्वामी साथे, सद्गुरु समकित लासुं,
छ'री'[२] पाली पाप पखाली, दुर्गति दूरे पलाश्युं... मोरा...६

श्री जिन नामी समकित पामी, लेखे त्यारे गणाशुं,
'ज्ञानविमल' कहे धन-धन ते दिन, परमानंद पद पाशुं...मोरा...७

(३)

शेत्रुंजा गढना वासी रे, मुजरो मानजो रे,
सेवकनी सुणी वातो रे, दिलमां धारजो रे,
प्रभु में दीठो तुमारो देदार, आज मुने उपन्यो हरख अपार,
साहिबानी सेवा रे, भवदुःख भांजशे रे...शेत्रुंजा...१

एक अरज अमारी रे, दिलमां धारजो रे,
चोरासी लाख फेरा रे, दूरे निवारजो रे,
प्रभु ! मने दुर्गति पडतो राख, तोरुं दरिशन वहेलुं[३] रे दाख
साहिबानी...२

दौलत सवाइ रे, सोरठ देशनी रे,
बलिहारी जाऊं रे, प्रभु तारी वेशनी रे,
प्रभु में दीठुं रूडुं[४] ताहरुं रुप,
देखी मोह्या सुरनर वृंद ने भूप साहिबानी...३

तीरथ को नहीं शेत्रुंजा सारखुं रे,
प्रवचन पेखीने कीधुं में पारखुं रे,
ऋषभ ने जोइ जोई हरखे जेह,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिभुवन लीला पामे तेह साहिबानी...४

भवो भव मागुं रे प्रभु तारी सेवना रे,
भावठ न भांगे रे जगमां जे विना रे,
प्रभु मारा पूरजो मनना कोड,
एम कहे **उदयरतन** कर जोड साहिबानी...५

(४)

मैं सिद्धाचल की भक्ति रचा,... सुख पा...लूं...रे,
कर आदिनाथ को वंदन,... पाप खपा...लूँ... रे ॥ टेक ॥
जो मोर कहीं बन जाऊं, प्रभु आगे नृत्य रचाऊं,
रावण की तरह मैं तीर्थंकर पद की पूँजी कमा...लूं...रे

शिवसुख पा...लूँ... रे मैं सिद्धाचल की... ॥ १ ॥

जो कोयल मैं बनजाऊं, प्रभुजी के गाने गाऊँ,
मैं दीनानाथ को रिझा-रिझा कर, अपना भाग्य जगा...लूँ रे,

शिवसुख पा...लूँ... रे मैं सिद्धाचल की... ॥ २ ॥

इस गिरि एक-एक कंकर, हीरे से भी मोल है बढ़कर,
कोई चतुर जौहरी अगर मिले तो, सच्चा मोल करा...लूँ रे,

शिवसुख पा...लूँ... रे मैं सिद्धाचल की... ॥ ३ ॥

---

१. छोटा पर्वत, २. तीर्थयात्री, १.पादविहारी, २.ब्रह्मचारी, ३.भूमि ४.संथारी, ५.एकल आहारी, ६.सचित-परिहारी, षडावश्यककारी होता है। ३. शीघ्र, ४. उत्तम.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शत्रुंजय शत्रु विनाशे, आत्मा की ज्योत प्रकाशे,
मैं भाव भक्ति के रंगमे अपना, जीवन वस्त्र रंगा...लूँ रे,

शिवसुख पा...लूँ... रे मैं सिद्धाचल की... ॥ ४ ॥

समता का द्वार बनालूँ, तप की दीवार चिनालूँ,
जहाँ राग-द्वेष नहीं घुसने पाये, ऐसा महल बना...लूँ रे,

शिवसुख पा...लूँ... रे मैं सिद्धाचल... ॥ ५ ॥

कार्तिक पूनम दिन आये, मन यात्रा को हुलसाये,
मैं राम धर्म का नीर सींचकर, आतम बाग खिला...लूँ रे,

शिवसुख पा...लूँ... रे मैं सिद्धाचल की... ॥ ६ ॥

(५)

सिद्धाचल वंदो रे नरनारी... नरनारी...
विमलाचल वंदो रे नरनारी (टेक)
नाभिराया सुत मरुदेवा नंदन, ऋषभदेव हितकारी. सिद्धा...१
पुंडरिक पमुहा बहुमुनि सिद्धा, आतमतत्त्व विचारी. सिद्धा...२
शिवसुख कारण भवदुःख वारण, त्रिभुवन जन हितकारी.
सिद्धा...३
समकित शुद्ध करण ए तीरथ, मोह मिथ्यात्व निवारी. सिद्धा...४
ज्ञान उद्योत प्रभु केवलधारी, भक्ति करुं एक तारी. सिद्धा...५

श्री ऋषभ-जिन के स्तवन

(१)

बालुडो निःस्नेही थइ गयो रे, छोड्यु विनीतानुं राज, छोड्युं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयम रमणी आराधवा, लेवा मुक्तिनुं राज, लेवा.
मेरे दिल वसी गयो वालमो, मेरे मन वसी गयो वालमो...१

माताने मेल्या एकला रे, जाय दिन नवि रात, जाय.
रत्नसिंहासन बेसवा, चाले [१]अणवाणे पाय, मेरे...२

व्हाला[२] नुं नाम नवि वीसरे रे, झरे आंसुडानी धार..झरे०
आँखलडीए छाया वली, गया वर्ष हजार...गया० मेरे...३

केवलरत्न आपी करी रे, पूरी मातानी आश...पूरी०
समवसरण लीला जोइने, साध्यां आतम काज...साध्या० मेरे...४

भक्तवत्सल भगवंतने रे, नम्ये निर्मल काय...नम्ये०
आदि जिणंद आराधतां, महिमा शिव सुख थाय...महिमा० मेरे...५

(२)

प्रथम जिनेश्वर प्रणमीए जास सुगंधि रे काय,
कल्पवृक्ष परे[१] तास इन्द्राणी, नयन जे भृंगपरे लपटाय, प्रथम...
॥ १ ॥

रोग उरग तुज नवि नडे,[३] अमृत जेह आस्वाद,
तेहथी प्रतिहत[४] तेह मानुं कोइ नवि करे,
जगमां तुमशुं रे वाद, प्रथम... ॥ २ ॥

वगर धोइ तुज निरमली, काया कंचन वान,
नहीं प्रस्वेद लगार,[५] तारे तुं तेहने, जे धरे ताहरूं ध्यान,
प्रथम... ॥ ३ ॥

१. वाणह (पग रखे) रहित (नंगेपाँव), २. प्रियतम, ३. पीडते, ४. पराजित, ५. तनीक भी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राग गयो तुज मनथकी, तेहमां [१]चित्र न कोय,
रुधिर आमिषथी [२]राग गयो तुज जन्मथी, दूध [३]सहोदर होय,
प्रथम... ॥ ४ ॥

श्वासोच्छवास कमल समो, तुज लोकोत्तर वात,
देखे न आहार [४]निहार चर्म चक्षु धणी, एहवा तुज अवदात[५],
प्रथम... ॥ ५ ॥

चार अतिशय मूलथी, ओगणीस देवना कीध,
कर्म खप्याथी अगियार, चोत्रीस इम अतिशया,
समवायांगे प्रसिद्ध, प्रथम... ॥ ६ ॥

जिन उत्तम गुण गावतां, गुण आवे निज अंग,
'पद्मविजय' कहे एह [६]समय प्रभु पालजो, जिम थाऊँ अखय अभंग,
प्रथम... ॥ ७ ॥

१. आश्चर्य, २. रक्तता, ३. समान, ४. शौच, ५. हकीकते, ६. संकेत मर्यादा

शंखेश्वर पार्श्वनाथ स्तुति

शंखेश्वर पार्श्वजी पूजिए, नरभवनो लाहो लीजिए ।
मनवांछित पूरण सुरतरु, जय वामासुत अलवेसरु ॥

अभिनंदन जिन स्तवन

अभिनंदन स्वामी हमारा, प्रभु भवदुःख भंजनहारा,
यह दुनिया दुःख की धारा, प्रभु इनसे करो निस्तारा, अभि...१
हुं कुमति कुटिल भरमायो, दुरनीति करी दुःख पायो,
अब शरण लियो है थारो, मुझे भवजल पार उतारो, अभि...२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं शीख हैये नवि धारी, दुर्गतिमें दुःख लियो भारी,
इन कर्मों की गति न्यारी, करे बेर बेर खुवारी, अभि_३

तुमे करुणावंत कहाओ, जगतारक बिरुद धरावो,
मेरी अरजीनो एक दावो, इन दुःख से क्युं न छुडाओ,अभि_४

में विरथा जनम गमायो, तन धन सुत नेह न निवार्यो,
अब पारस परसंग पामी, नहीं वीरविजय कुं खामी, अभि_५

श्री वासुपूज्य जिन स्तवन

(राग : तुम्ही मेरी)

स्वामि तुमे कांई कामण कीधुं चित्तडुं अमारुं चोरी लीधुं,
अमे पण तुमशुं कामण करशुं, भक्ति सहित मन घरमां धरशुं,
साहिबा वासुपूज्य जिणंदा, मोहना वासुपूज्य जिणंदा ॥ १ ॥

मन घरमां धरीया घर शोभा, देखत नित्य रहेशो थिर थोभा ।
मन वैकुंठ अकुंठित भगते,
योगी भाखे अनुभव जुगते_____साहिबा. ॥ २ ॥

क्लेशे वासित मन संसार, क्लेश-रहित मन ते भवपार ।
जो विशुद्ध मन घर तुमे आया, प्रभु तो अमे
नवनिधिरिद्धि पाया_____ साहिबा. ॥ ३ ॥

सात राज अलगा जइ बेठा, पण भगते अम मनमांही पेठा ।
अलगाने वलग्या जे रहेवुं, ते भाणा-खडखड दुःख सहेवुं
साहिबा. ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यायक ध्येय ध्यान गुण एके, भेद छेद करशुं हवे टेके ।
खीर नीर परे तुमशुं मिलशुं, वाचक यश कहे हेजे हलशुं
साहिबा. ॥५ ॥

श्री ऋषभदेव स्तवन

जगजीवन जगवालहो, मरुदेवीनो नंद लाल रे।
मुख दीठे सुख उपजे, दरिसणे अति ही आणंद लाल रे ।
जग जीवन०_ ॥ १ ॥

आंखडी अंबुज पांखडी, अष्टमी शशी सम भाल लाल रे।
वदन ते शारद चंदलो, वाणी अतिही रसाल लाल रे।
जग जीवन०_ ॥ २ ॥

लक्षण अंगे विराजता, अडहिय सहस उदार लाल रे।
रेखा-कर-चरणादिके, अभ्यंतर नहीं पार लाल रे।
जग जीवन०_ ॥ ३ ॥

इन्द्र चंद्र रवि गिरि तणा, गुण लइ घडियुं अंग लाल रे।
भाग्य किहां थकी आवीयुं, अचरिज एह उत्तंग लाल रे।
जग जीवन०_ ॥ ४ ॥

गुण सघणां अंगीकर्या, दूर कर्या सवि दोष लाल रे।
वाचक जसविजये थुण्यो, देजो सुखनो पोष लाल रे।
जग जीवन०_ ॥ ५ ॥

श्री पद्मप्रभ जिन स्तवन

पद्मप्रभ ! प्राण से प्यारा, छोडावो कर्म की धारा,
करम फंद तोडवा धोरी, प्रभुजी से अर्ज है मोरी_ पद्म_१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघुवय एक थें जीया, मुक्ति में वास तुम किया,
न जानी पीर थें मोरी, प्रभु अब खींच ले दोरी. प्रद्य...२

विषय सुख मानी मों मन में, गयो सब काल गफलत में,
नरक दुःख वेदना भारी, नीकलवा ना रही बारी. प्रद्य...३

परवश दीनता कीनी, पाप की पोट सिर लीनी,
भक्ति नहीं जानी तुम केरी, रह्यो निशदिन दुःख घेरी. प्रद्य...४

इसविध विनती तोरी, करुं मैं दोय कर जोरी,
आतम आनंद मुज दीजो, वीरनुं काज सब कीजो. प्रद्य...५

श्री शीतलनाथ जिन स्तवन

शीतल जिन मोहे प्यारा..... साहिबा शीतल जिन०
भुवन विरोचन पंकज लोचन, जिऊ के जिऊ हमारा.साहिबा...१

ज्योति शुं ज्योति मिलत जब ध्यावे, होवत नहीं तब न्यारा,
बांधी मूठी खूले भव माया, मीटत महाभ्रम भारा. साहिबा...२

तुम न्यारे तब सबहीं न्यारा, अंतर कुटुंब उदारा,
तुम ही नजीक नजीक है सब ही, ऋद्धि अनंत अपारा.
साहिबा...३

विषय लगन की अगन बुझावत, तुम गुन अनुभव धारा,
भई मगनता तुम गुन रस की, कौन कंचन कौन दारा.
साहिबा...४

शीतलता गुने होड करत तुम, चंदन कहां बिचारा,
नामे ही तुम ताप हरत हो, वांकुँ घसत घसारा. साहिबा...५

करत कष्ट जन बहुत, हमारे नाम तिहारु आधारा,
जश कहे जनम मरण भय भागो, तुम नामे भव पारा. साहिबा...६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री शांतिनाथ जिन स्तवन (१)

हम मगन भये प्रभु - ध्यान में,
बीसर गई दुविधा तन मन की, अचिरासुत-गुणगान में, हम०
हरि हर ब्रह्मा पुरंदर की रिद्धि, आवत नहीं कोउ मान में,
चिदानंद की मौज मची है, समता रसके पान में। हम..१

इतने दिन तुम नाहिं पिछान्यो, गयो जनम सब अजान में,
अब तो अधिकारी होइ बैठे, प्रभु गुण अखय खजान में।
हम..२

गई दीनता अब सबही हमारी, प्रभु तुज समकित दान में,
प्रभु गुण अनुभव रसके आगे, आवत नहीं कोउ मान में।
हम..३

जिनही पाया तिन ही छिपाया, न कहे कोउ के कान में,
ताली लागी जब अनुभव की, तब समझे एक सान[1] में।
हम..४

प्रभु गुण अनुभव चंद्रहास[2] ज्युं, सोतो न रहे म्यान में,
वाचक जश कहे मोह महाअरि, जित लियो मैदान में।हम..५

(२)

शांति जिनेश्वर साचो साहिब, शांतिकरण इन कलि में
हो जिनजी..

१. संकेत, इशारे २. तलवार

तुं मेरा मन में तुं मेरा दिल में, ध्यान धरूं पलपल में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहेबजी तुं मेरा...१
भवमां भमता में दरिसन पायो, आशा पूरो एक पलमें
हो जिनजी तुं मेरा...२
निरमल ज्योत वदन पर सोहे, निकस्यो ज्युं चंद बादल में,
हो जिनजी तुं मेरा...३
मेरो मन तुम साथे लीनो, मीन वसे ज्युं जल में,
हो जिनजी तुं मेरा...४
जिनरंग कहे प्रभु शांति जिनेश्वर, दीठोजी देव सकल में,
हो जिनजी तुं मेरा...५

श्री नेमिनाथ प्रभु का स्तवन

देखो माई अजब रूप जिनजी को
उनके आगे और सबहुं का, रूप लागे मोहे फीको। देखो...
लोचन करूणा अमृत कचोले,[१] मुख सोहे अति नीको[२]
कवि जस विजय कहे युं साहिब
नेमजी त्रिभुवन टीको। देखो...

श्री पार्श्वनाथ प्रभु के स्तवन

(१)

समय समय सो वार संभारूं, तुजशुं लगनी जोर रे,
मोहन मुजरो मानी लीजे, ज्यूं जलधर प्रीति मोर रे
समय. ॥ १ ॥

१. कटोरा, २. सुन्दर, अच्छा

माहरे तन-धन-जीवन तुं ही, एहमां झूठ न जानो रे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतरजामी जगजन नेता, तुं किंहा नथी छानो रे... समय. ॥ २ ॥
जेणे तुजने हियडे नवि धार्यो, तास जनम कुण लेखे रे,
काचे राचे ते नर मूरख, रतनने दूर उवेखे रे... समय. ॥ ३ ॥
सुरतरु छाया मूकी गहरी, बाउल तले कुण बेसे रे,
ताहरी ओलग लागे मीठी, किम छोडाय विशेषे रे...
समय. ॥ ४ ॥
वामा नंदन पार्श्वप्रभुजी, अरजी उरमां आणो रे,
रुप विबुधनो मोहन पभणे, निज सेवक करी जाणो रे... समय. ॥ ५ ॥

(२)

प्रभु पास चिंतामणि मेरो, हां रे प्रभु,
मिल गयो हीरो ने मिट गयो फेरो,
नाम जपुं नित तेरो रे ॥ १ ॥प्रभु...
प्रीत लगी मेरी प्यारे प्रभु से
जैसो चंद चकोरो रे ॥ २ ॥प्रभु...
आनंदघन प्रभु चरण शरण है
मुज दीयो मुक्ति को डेरो रे ॥ ३ ॥प्रभु...

(३)

कोयल टहुकी रही मधुबन में, पार्श्व शामलिया वसो मेरे दिल में,...
काशीदेश वाराणसी नगरी, जन्म लियो प्रभु क्षत्रिय कुल में...
पार्श्व १
बालपणाथी प्रभु अद्‌भुत ज्ञानी, कमठ को मान हर्यो एक पलमे
नाग निकाला का चिराकर, नागकुं सुरपति कियो एक छिन में...पार्श्व ३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयम लइ प्रभु विचरवा लाग्या, संयमे भींज गयो एक रंग में..पार्श्व ४
संमेतशिखर प्रभु मोक्षे सिधाव्या, प्रभुजी (पार्श्वजी) को
महिमा तीन भुवन में_ पार्श्व ५
'उदयरतन' की एही अरज है, दिल अटको तोरा चरणकमल में पार्श्व ६

'भीडभंजन पार्श्वप्रभु समरो,
अरिहंत अनंतनुं ध्यान धरो;
जिनआगम अमृत पान करो,
शालनदेवी सवि विघ्न हरो.

श्री श्रेयांस जिन स्तवन

(राग : अनंत वीरज अरिहंत)

श्रेयांस जिणंद घनाघन गहगह्यो,
वृक्ष अशोकनी छाया, सुभर छाई रह्यो,
भामण्डलनी झलक झबूके विजली,
उन्नत गढ तिग इन्द्रधनुष शोभा मिली ॥ १ ॥
देव दुंदुभिनो नाद, गुहिर गाजे घणो,
भाविक जन मन नाटक, मोर क्रीडांगणुं,
चामरकेरी हार चलंती बगतति,
देशना सरस सुधारस वरसे जिनपति ॥ २ ॥
समकिती चातकवृंद तृप्ति पामे तिहा,
सकल कषाय दावानल शांति हुइ तिहा;
जनचित्तवृत्ति सुभूमि त्रेहांली थई रही,
तेणें रोमांच अंकुरवती काया लही ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण कृषिवल सज्ज हुए तब उज्जमी,
गुणवंतजन मन क्षेत्र संभारे संयमी,
करतां बीजाधान सुधान्य निपावता,

तेणे जगतना लोक रहे सवि जीवता ॥ ४ ॥

गणधर गिरितट संगी थई सूत्र गूंथना,
तेह नदी प्रवाहे हुई बहु पावना (वाचना);
एहि ज मोटो आधार विषम काले लह्यो,

मानविजय उवज्झाय कहे में सह्यो ॥ ५ ॥

श्री महावीर प्रभु के स्तवन

(१)

वीर वीरनी धून जगावो, प्रभु वीरनां दरशन पावो
प्रभु वीर ने शिर झुकावो, वीर वीरनी धून जगावो ॥ १ ॥

भवसागरमां वीर सुकानी,[१] नैया पार तरावो,
पापनी भेखड़[२] दूर हटावी, शिव मंदिर बतलावो... वीर. ॥ २ ॥

देह सदनमां आत्मा जगाडी, ज्ञान ज्योति प्रगटावो,
भाव भरेला अमीरस रिंचो, आ भव पार उतारो... वीर. ॥ ३ ॥

१. पतवार, २. कगार,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२) जिनवाणी स्तवन

(राग - अखंड सौभाग्यवती)

रूडी ने रढियाली[१] रे, वीर तारी देशना रे

ए तो भली योजनमां संभलाय, समकित बीज आरोपण थाय वीर तारी १

षड् महिनानी भूख तरस शमे रे, साकर द्राक्ष ते हारी जाय रे,

कुमति जनना मद मोडाय, वीर तारी देशना रे... वीर तारी २

[२]चारनिक्षेपे [३]सात नये करी रे, मांहे भली [४]सप्तभंगी विख्यात,

निज निज भाषाए समजाय... वीर तारी ३

प्रभुजीने ध्यातां शिवपदवी लहेरे, आतम ऋद्धिनो भोक्ता थाय,

ज्ञानमां लोकालोक समाय... वीर तारी ४

प्रभुजी सरिखा देशक को नहिं रे, एम सहु जिन उत्तम गुणगाय

प्रभु पद पद्मने नित्य नित्य ध्याय... वीर तारी ५

१. अति सुंदर, २. नामनिक्षेपादि, ३. नैगमनयादि, ४. स्यात् अस्ति आदि.

(३)

जगपति तुं तो देवाधिदेव ! दासनो दास छुं ताहरो,
जगपति तारक तुं किरतार, मनरो मोहन प्रभु माहरो ॥ १ ॥
जगपति ताहरे भक्त अनेक, माहरे एकज तुं धणी,
जगपति वीरमां तुं महावीर, मूरति ताहरी सोहामणी ॥ २ ॥
जगपति त्रिशला राणीनो तुं तन[१], गंधार बंदरे[२] गाजियो,
जगपति सिद्धारथ कुल शणगार, राजराजेश्वर राजियो ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगपति भक्तोनी भांगे तुं भीड[३], पीड पराइ प्रभु पारखे,
जगपति तुं प्रभु अगम अपार, समज्यो न जाये मुज सारिखे ॥ ४ ॥
जगपति खंभायत जंबुसर संघ, भगवंत चोवीसमो भेटियो,
जगपति उदय नमे कर जोड़, [४]सत्तर नेवुं समे कियो ॥ ५ ॥

(४)

गौतम विलाप स्तवन

प्रभु बिन वाणी कोण सुनावे ? कोण सुनावे, कोण
सुनावे_प्रभु बिन०
जब ए वीर गये शिवमंदिर, अब मेरा संशय कोण मिटावे प्रभु.
कहे गौतम गणधर [६]तमहर ए, जिनवर दिनकर जावे रे जावे
प्रभु.
कुमति उलूक कुतीर्थि कुतारा, तिगतिगाट[५] तस थावे रे थावे प्रभु.
तुम विण चउविह संघ कमल वन, विकसित कोण करावे करावे०
मोकुँ साथ लेइ कयुं न चले, चित्त अपराध धरावे धरावे. प्रभु.
यूं परभाव विसारी अपनो, भाव समभाव ज लावे रे लावे. प्रभु.
वीर वीर लवतां[७] 'वी' अक्षरे, अंतर तिमिर हटावे हटावे. प्रभु.
इन्द्रभूति अनुभव अनुभूतिए, ज्ञानविमल गुण पावे रे पावे. प्रभु.
सकल सुरासुर हरखित होवत, जुहार करण कुं आवे रे आवे प्रभु.

१. तनय, पुत्र, २. कावी के निकट में हैं, ३. कष्ट, ४. १७९० की साल में बनायो, ५. जुगनु के समान चमक, ६. अज्ञान तिमिर दूर करने वाले, ७. बोलते बोलते.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५)

माता त्रिशलानंद कुमार, जगतनो दीवो रे,
मारा प्राण तणो आधार, वीर घणुं जीवो रे,
आमलकी क्रीडाए रमतां, हार्यो सुर प्रभु पामी रे.
सुणजो ने स्वामी आतमरामी ! बात कहुं शिर नामी रे।
वीर घणुं- ॥ १ ॥
सौधर्मा देवलोके रहेतां, अमो[१] मिथ्यात्वे भराणां रे,
नागदेवनी पूजा करतां, शिर न धरी प्रभु आणा रे ॥ २ ॥
एक दिन इन्द्र सभामां बेठा, सोहमपति एम बोले रे,
धीरज बल त्रिभुवननुं नावे, त्रिशला बालक तोले रे ॥ ३ ॥
साचुं साचुं सहु सुर बोल्या, पण में बात न मानी रे,
फणीधर ने लघु बालकरूपे, रमत रमियो छानी रे ॥ ४ ॥
वर्धमान तुम धैर्यज मोटुं, बालपणामां (बलमां पण) नहीं काचुं रे,
गिरूआना[२] गुण गिरूआ गावे, हवे में जाण्युं साचुं रे ॥ ५ ॥
एक ज मुष्टि प्रहारे म्हारुं, मिथ्यात्व भाग्युं जाय रे,
केवल प्रगटे मोहरायने, रहेवानुं नहि थाय रे ॥ ६ ॥
आज थकी[३] तुं साहिब मारो, हुं छुं सेवक तारो रे,
क्षण एक स्वामी गुण न विसारुं, प्राणथकी तुं प्यारो रे,॥ ७ ॥
मोह हटावे समकित पावे, ते सुर स्वर्ग सिधावे रे,
महावीर प्रभुनुं नाम धरावे, इन्द्र सभा गुण गावे रे ॥ ८ ॥
प्रभु मलकता[४] निज घेर आवे, सरिखा मित्र सोहावे रे,
श्री शुभवीरनुं मुखडुं जोतां, माताजी सुख पावे रे ॥ ९ ॥

---

१. हम, २. महापुरुषों के, ३. से, ४. प्रसन्न होकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(६)

दीनदुखियानो तुं छे बेली, तुं छे तारणहार, तारा महिमानो नहि पार
राजपाट ने वैभव छोडी, छोडी दीधो संसार तारा-१

चरणे चंडकोशियो डसियो, दूधनी धारा पगथी नीकले,
विषने बदले दूध जोइने, चंडकोशियो आव्यो शरणे,
चंडकोशिकने तें तारी, कीधो घणो उपकार तारा-२

काने खीला ठोक्या ज्यारे, थइ वेदना प्रभुने भारे,
तोये प्रभुजी शांति विचारे, गोवालनो नहि वांक लगारे,
क्षमा आपीने ते जीवोने, तारी दीधा संसार तारा-३

महावीर ! महावीर ! गौतम पुकारे, आंखथी आंसुनी धारा वहावे,
क्यां गया एकला मूकी मुजने, हवे नथी जगमां कोइ मारे,
पश्चात्ताप करतां करतां, उपन्युं केवलज्ञान तारा-४

ज्ञानविमल गुरुवयणे आजे, गुण तमारा गावे हरखे,
थइ सुकानी[१] तुं प्रभु आवे, नैया भवजल पार तरावे,
अरज स्वीकारो दिलमां धारो, वंदन वारं वार तारा-५

जिनोपदेश

ऋतुवंती अडके नहि रे, करे नहि घरना काम जो,
तेहना वांछित पूरशे ए, देवीश्री अंबिका नाम तो,
हित उपदेशे हर्ष धरोए, कोइ न करशो रीस तो,
कीर्ति कमला पामशो ए, जीव कहे तस शिष्य तो ।

---

१. नाविक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रेमनुं अमृत पावुं छे

प्रभु तारुं गीत मारे गावुं छे, प्रेमनुं अमृत पावुं छे,
आवे जीवनमां तडका छाया, मागुं तारी एक ज माया,
भक्तिना रसमां नहावुं छे, प्रभु तारुं गीत मारे गावुं छे ॥ १ ॥

भवसागरमां नाव झुकावी, त्यां तो अचानक आंधी चढी आवी,
सामे किनारे मारे जावुं छे, प्रभु तारुं गीत मारे गावुं छे ॥ २ ॥

तुं वीतरागी हुं अनुरागी, तारा जीवननी रढ मने लागी,
प्रभु तारा जेवुं मारे थावुं छे, प्रभु तारुं गीत मारे गावुं छे ॥ ३ ॥

प्रेमनुं अमृत पावुं छे,
भक्तिना रसमां नहावुं छे,
सामे किनारे मारे जावुं छे,
प्रभु तारा जेवुं मारे थावुं छे..प्रभु. ॥ ४ ॥

श्री सुपार्श्वनाथ जिन स्तवन

श्री सुपार्श्व जिनराज, तुं त्रिभुवन शीरताज,
आज हो छाजे रे ठकुराइ प्रभु तुज पदतणीजी ॥१ ॥

दिव्यध्वनि सुरफूल, चामरछत्र अमूल,
आज हो राजे रे भामंडल गाजे दुंदुभीजी ॥२ ॥

अतिशय सहजना चार, कर्म खप्याथी अग्यार,
आज हो कीधा रे ओगणीस सुरगण भासुरेजी ॥३ ॥

वाणीगुण पांत्रीश, प्रातिहार ज जगदीश,
आज हो राजे रे दिवाजे छाजे आठसुं जी ॥४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंहासन अशोक, बेठा मोहे लोक,
आज हो स्वामी रे शिवगामी वाचकजस थुण्योजी ॥ ५ ॥

स्तुतियां (थोय)

श्री आदि जिन स्तुति (१)

आदि जिनवर राया, जास सोवन्न काया,
मरुदेवी माया, धोरी[१] लंछन पाया,
जगत स्थिति निपाया, शुद्ध चारित्र पाया,
केवलसिरि राया, मोक्ष नगरे सिधाया ॥ १ ॥

सवि जिन सुखकारी, मोह मिथ्या निवारी,
दुर्गति दुःख भारी, शोक संताप वारी;
श्रेणी क्षपक सुधारी, केवलानन्त धारी,
नमिये नर नारी, जेह विश्वोपकारी ॥ २ ॥

समवसरणे बैठा, लागे छे जिनजी मीठा,
करे गणप पइट्ठा[२] इन्द्र चन्द्रादि दीठा;
द्वादशांगी वरिट्ठा[३], गूंथता टाले रिट्ठा[४],
भविजन होय हिट्ठा, देखी पुण्ये गरिट्ठा[५] ॥ ३ ॥

सुर समकितवंता, जेह रिद्धे महंता,
जेह सज्जन संता, टालिये मुज चिंता,
जिनवर सेवंता, विघ्न वारे दुरंता,
जिन उत्तम थुणंता, पद्मने सुख दिंता ॥ ४ ॥

१. बैल, वृषभ, २. प्रतिष्ठा, ३. वरिष्ठ, ४. अमंगल, ५. बलवान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२)

प्रह उठी वंदूं ऋषभदेव गुणवंत,
प्रभु बेठा सोहे समवसरण भगवंत,
गण छत्र विराजे, चामर ढाले इन्द्र,
जिनना गुण गावे सुरनर नारीनां वृन्द ॥ १ ॥

(यहां किसी भी, भगवान की स्तुति बोलनी हो, तब 'ऋषभदेव' के स्थान पर उस भगवान का नाम जोड़ सकते हैं। जैसे 'अजितनाथ गुणवंत', 'वासुपूज्य गुणवंत', वर्धमान गुणवंत'_)

श्री महावीर प्रभु की स्तुति

जय जय भवि हितकर, वीर जिनेश्वर देव,
सुरनरना नायक, जेहनी सारे सेव,
करुणा रस कंदो, वंदो आणंद आणी,
त्रिशला सुत सुन्दर, गुणमणि केरो खाणी ॥ १ ॥

श्री सिद्धचक्रजी की स्तुति

प्रह उठी वंदु, सिद्धचक्र सदाय,
जपीए नवपदनो, जाप सदा सुखदाय,
विधिपूर्वक ए तप, जे करे थइ उजमाल,
ते सवि सुख पामे, जिम मयणा श्रीपाल ॥ १ ॥

श्री सिद्धाचल महातीर्थ की स्तुति

श्री शत्रुंजय तीरथ सार, गिरिवरमां जेम मेरु उदार,

ठाकुर राम अपार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंत्र मांहे नवकार ज जाणुं, तारामां जिम चंद्र वखाणुं,
जलनिधि जलमां जाणुं,
पंखी मांहे जेम उत्तम हंस, कुल मांहे जेम ऋषभनो वंश
नाभि तणो ए अंश,
क्षमावंतमां श्री अरिहंत, तपशूरामां मुनिवर महंत,
शत्रुंजय गिरि गुणवंत

सज्झाय (१)

लज्जा मोरी राखो देव जरी।
द्रौपदी राणी यूं[१] कर वीनवे, कर दोय सीस धरी।
द्यूत रसे मुज प्रीतम हार्यो, वात करी न खरी के लज्जा. १
देवर दुर्योधन, दुःशासन, एहनी बुद्धि फरी,
चीवर खेंचे मोटी सभा मां, मनमें द्वेष धरी के लज्जा. २
भीष्म, द्रोण, कर्णादिक सब में, कौरव बीक[२] भरी.
पांडव प्रेम तजी मुज बेठा, जे हता जीवनेश्वरी[३] के लज्जा. ३
अरिहंत एक आधार हमारे, शियल सुगंध धरी,
पत राखो प्रभुजी इण वेला, समकितवंत सुरी के लज्जा. ४
ततखिण अष्टोत्तर शत चीवर, पूर्या प्रेम धरी,
शासनदेवी जयजय बोले, कुसुमनी वृष्टि करी के लज्जा. ५
शियल प्रभावे द्रौपदी राणी, लज्जा लील वरी[४]
पांडव कुंत्यादिक सौ हरख्या, कहे धन्य [५]धीर धरी
के लज्जा. ६

---

१ इस रीतिसे, २. भय, ३. प्राणेश्वर ४. इज्जत (प्रतिष्ठा) की लीला, ५. धैर्य धारण कर के।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य शील प्रतापे कृष्णा, भवजल पार तरी,
जिन कहे शीयल धरे तस जनने, नमिए पाय परी के लज्जा. ७

(२)

जगत है स्वार्थ का साथी, समज ले कौन है अपना ।
यह काया काच का कुंभा, नाहक तुं देखके फूलता,
पलक में फूट जावेगा, पत्ता ज्युं डाल से गिरता जगत् ॥ १ ॥

मनुष्य की ऐसी जिंदगानी, अभी तुं चेत अभिमानी,
जीवन का क्या भरोसा है, करी ले धर्म की करनी
जगत् ॥ २ ॥

खजाना माल ने मंदिर, क्युं कहता मेरा मेरा तू,
इहां सब छोड़ जाना है, न आवे साथ कुछ तेरा
जगत् ॥ ३ ॥

कुटुंब परिवार सुत दारा, सुपन सम देख जग सारा,
निकल जब हंस जावेगा, उसी दिन है सभी न्यारा
जगत् ॥ ४ ॥

तैरे संसार सागर को, जपे जो नाम जिनवर को,
कहे 'खांति' येही प्राणी, हटावे कर्म जंजीर को
जगत् ॥ ५ ॥

(३)

(काफी तप पदने पूजीजे' यह राग)

कौन किसी को मित्त, जगत में कौन किसी को मित्त,
मात तात अरु भ्रात स्वजन से, काहे रह निश्चित ? तमें जगत् ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब ही अपने स्वारथ के है, परमारथ नहीं प्रीत,
स्वारथ विणसे सगो न होसी, मित्ता मन में चिंत
जगत्. ॥ २ ॥

उठ चलेगा आप अकेलो, तुं ही तुं सुविदित।
को नहीं तेरा तुं नहिं किसका, एह अनादि रीत
जगत्. ॥ ३ ॥

ता ते एक भगवान भजन की, राखो मन में चिंत,
'ज्ञानसागर' कहे काफी होयी, गायो आतम गीत
जगत्. ॥ ४ ॥

(४)

अवसर बेर बेर नहि आवे, अवसर बेर बेर—
ज्युं जाणे त्युं करले भलाई, जनम जनम सुख पावे, अवसर. १
तन धन जोबन सब ही जूठो, प्राण पलक में जावे, अवसर. २
तन छूटे धन कौन काम को, काहे कुं कृपण कहावे,
अवसर. ३
जाके दिल में साच बसत है, ताकुं जूठ न भावे, अवसर. ४
आनंदघन प्रभु चलत पंथ में, सिमर सिमर गुण गावे,
अवसर. ५

(५)

जगमें न तेरा कोई, नर देख हु निश्चे जोई। जगमें—
सुत मात तात अरु नारी, सहु स्वारथ के हितकारी,
बिन स्वारथ शत्रु सोइ जगमें. ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तू फिरत महामद माता, मूरख विषय संग राता,
निज अंग की सुध बुध खोइ जगमें. ॥ २ ॥
घट ज्ञान कला नवि जाकुं, पर निज मानत है ताकुं
आखिर पछतावा होइ_ जगमें. ॥३ ॥
नवि अनुपम नरभव हारो, निज शुद्ध स्वरूप निहाळो,
अंतर ममता मल धोइ... जगमें. ॥ ४ ॥
प्रभु चिदानंद की वाणी, तू धार निश्चे जग प्राणी,
जिम सफल होत भव दोइ_ जगमें. ॥ ५ ॥

(६)

मान मा, मान मा, मान मा रे, जीव मारुं करीने मान मा.
अंतकाले तो सर्व मूकीने, ठरवुं जइ शमशानमां रे
जीव ॥ १ ॥
वैभव विलासी पाप करो छो, मरी तिर्यंच थाशो रानमां रे
जीव ॥ २ ॥
रागना रंगमां भूला पडो छो, पडशो चोराशीनी खाणमां रे
जीव ॥ ३ ॥
जगतमां तारुं कोइ नथी रे, मन राखजे भगवानमां रे
जीव ॥ ४ ॥
वृद्धावस्था आवशे त्यारे, थाक पडशे तारा कानमां रे
जीव ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोक दिन जान[१]मां तो, कोक दिन काण[२]मां,
मिथ्या फरे अभिमानमां रे जीव ॥ ६ ॥

कोक दिन सुखमां तो, कोक दिन दुःखमां,
सघला ते दिन सरीखा जाण मा रे... जीव ॥ ७ ॥

सुत वित्त दारा पुत्रो ने भृत्यो, अंते ते तारा जाण मा रे...
जीव ॥ ८ ॥

आयु अथिर ने धन चंपल छे, फोगट मोह्यो तेना तानमां रे
जीव ॥ ९ ॥

छेलबटुक[३] थइ शाने फरो छो, ! अधिक गुमान मान तानमां रे
जीव ॥ १० ॥

मुनि केवल कहे सुणजो सज्जन सहु, मन राखजो भगवानमां रे
जीव ॥ ११ ॥

सुखदुःख कारण जीवने, कोइ अवर न होय,
कर्म आप जे आचर्या, भोगवीए सोय जीव ॥ १२ ॥

---

१. बारात, २. रुदन, ३. बहुरुपि.

पच्चक्खाण

१. नवकारसहित (नमुक्कारसहिअ-नवकारसी २. पौरिषी (पोरिसी) ३. पुरिमार्ध ४. एकासन ५. एकलठाण ६. आयंबिल ७. उपवास ८. दिवसचरिमं अथवा भवचरिमं ९. अभिग्रह १०. विगई (घी, दूध, दहीं, गुड, शक्कर आदि) -यह दश प्रकार के पच्चक्खाण हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन, वचन और काया ये तीनों योग, करना, कराना और अनुमोदन करना-इन तीन कारण के योग, 'एक संयोगी' आदि भांगे तीन काल के आश्रय से कुल १४७ होते हैं। उनके ज्ञान के साथ किया गया पच्चक्खाण शुद्ध होता है।

[प्रवचन सारोद्धार]

गंठिसहियं पच्च० का महत्त्व :

जो अप्रमत्त आत्माएं हमेशा ग्रंथिसहित पच्चक्खाण की गांठ बांधते हैं, वे स्वर्ग और मोक्ष के सुख अपनी गठरी में बाँधते हैं-ऐसा समझना चाहिए।

अपि च, विस्मृत न करने वाले वे धन्य पुरुष श्री नमस्कार मंत्र का स्मरण करके ग्रंथिसहित की गाँठ छोड़ने के साथ साथ कर्म की गाँठ भी छोड़ देते हैं। अतः वे व्यक्ति ग्रंथिसहित का अभ्यास करते हैं जो शिवपुर के मार्ग के अभ्यासार्थी हैं। गीतार्थजन का कथन है कि ग्रंथसहित पच्चक्खाण का फल अनशन जितना होता है। (यति-दिनचर्या)

पच्चक्खाण से कर्म के आश्रव के द्वार (निमित्त) बंद हो जाते हैं। फलतः तृष्णा का छेद होता है। तृष्णा छेद से मनुष्य में अनुपम उपशम प्रगट होता है। उससे पच्चक्खाण शुद्ध होता है।

शुद्ध पच्चक्खाण से निश्चयरूपेण चारित्रधर्म प्रगट होता है जिससे पुराने कर्मों की निर्जरा होती है। फलतः 'अपूर्वकरण' (आत्मा का अपूर्व वीर्योल्लास) गुण व्यक्त होता है जो केवलज्ञान का कारण होता है और केवलज्ञान से शाश्वत सुख का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थानस्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है। (आवश्यक निर्युक्ति)

नवकारसी

प्रभात के समय-'नमुक्कारसहिअं मुट्ठिसहिअं' पच्चक्खाण :

उग्गए सूरे नमुक्कारसहिअं मुट्ठिसहिअं
पच्चक्खाइ[१](पच्चक्खामि)
चउव्विहं पि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं,
अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं,
सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरइ[१](वोसिरामि)

रात्रि (शाम) का पच्चक्खाण पाणहार

पाणहार दिवस चरिमं पच्चक्खाइ(पच्चक्खामि) अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, वोसिरइ(वोसिरामि)

चउविहार, तिविहार, दुविहार

दिवस चरिमं पच्चक्खाइ, चउव्विहंपि आहारं, तिविहंपि आहारं, दुविहंपि आहारं, असणं, पाणं, खाइमं, साइमं अन्नत्थणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरई।

१. पच्चक्खाण करनेवाला 'पच्चक्खामि' और 'वोसिरामि' शब्द कहे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौबीस तीर्थंकरों के नामादि

क्रम	नाम	वर्ण	लंछन	पिता	माता
१	ऋषभदेव	पीत	वृषभ	नाभिराज	मरुदेवी
२	अजितनाथ	पीत	हाथी	जितशत्रु	विजया
३	संभवनाथ	पीत	घोड़ा	जितारि	सेना
४	अभिनंदनस्वामी	पीत	वानर	संवर	सिद्धार्था
५	सुमतिनाथ	पीत	क्रौंचपक्षी	मेघराज	मंगला
६	पद्मप्रभ स्वामी	लाल	पद्म	श्रीधर	सुसीमा
७	सुपार्श्वनाथ	पीत	साथिया	प्रतिष्ठित	पृथ्वी
८	चन्द्रप्रभ स्वामी	श्वेत	चन्द्र	महसेन	लक्ष्मणा
९	सुविधिनाथ	श्वेत	मकर	सुग्रीव	रामा
१०	शीतलनाथ	पीत	वत्स	दढरथ	नन्दा
११	श्रेयांसनाथ	पीत	गैंडा	विष्णुराज	विष्णु
१२	वासुपूज्य	लाल	भैंसा	वसुपूज्य	जया
१३	विमलनाथ	पीत	सुअर	कृतवर्म	श्यामा
१४	अनन्तनाथ	पीत	बाज	सिंहसेन	सुयशा
१५	धर्मनाथ	पीत	वज्र	भानु	सुव्रता
१६	शांतिनाथ	पीत	मृग	विश्वसेन	अचिरा
१७	कुंथुनाथ	पीत	बकरा	सुरराजा	श्रीराणी
१८	अरनाथ	पीत	नंद्यावर्त	सुदर्शन	देवीराणी
१९	मल्लिनाथ	नील	कलश	कुंभराजा	प्रभावती
२०	मुनिसुव्रतस्वामी	कृष्ण	कछुआ	सुमित्र	पद्मा
२१	नमिनाथ	पीत	नीलकमल	विजय	वप्रा
२२	नेमिनाथ	कृष्ण	शंख	समुद्रविजय	शिवा
२३	पार्श्वनाथ	नील	सर्प	अश्वसेन	वामा
२४	महावीरस्वामी	पीत	सिंह	सिद्धार्थ	त्रिशला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री आदिजिणंदनी आरती

१. जय जय आरती आदि जिणंदा, नाभिराया मरुदेवीको नंदा जय०
२. पहेली आरती पूजा कीजे, नरभव पामीने ल्हावो लीजे जय०
३. दूसरी आरती दीनदयाला, धूलेवा मंडपमां जग अजुवाला जय०
४. तीसरी आरती त्रिभुवन देवा, सुरनर इन्द्र करे तोरी सेवा जय०
५. चौथी आरती चउगति चूरे, मनवंछित फल शिवसुख पूरे जय०
६. पंचमी आरती पुण्य उपाया, मूलचंदे रिखव गुण गाया जय०

मंगल दीवो

(दीवो दीवो दीवो रे, मंगलिक दीवो दीवो रे)

दीवो रे दीवो प्रभु मंगलिक दीवो,

आरती उतारण बहु चिरंजीवो_दीवो ॥ १ ॥

सोहामणुं घेर पर्व दिवाली, अंबर खेले अमराबाली_दीवो ॥ २ ॥

दीपाल भणे एणे कुल अजुवाली,
भावे भगते विधन निवारी_दीवो ॥ ३ ॥
दीपाल भणी एणे ए कलिकाले,
आरती उतारी राजा कुमारपाले_दीवो ॥ ४ ॥
अम घेर मंगलिक तुम घेर मंगलिक,
मंगलिक चतुर्विध संघने होजो_दीवो ॥ ५ ॥

* * *

इति शुभम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org